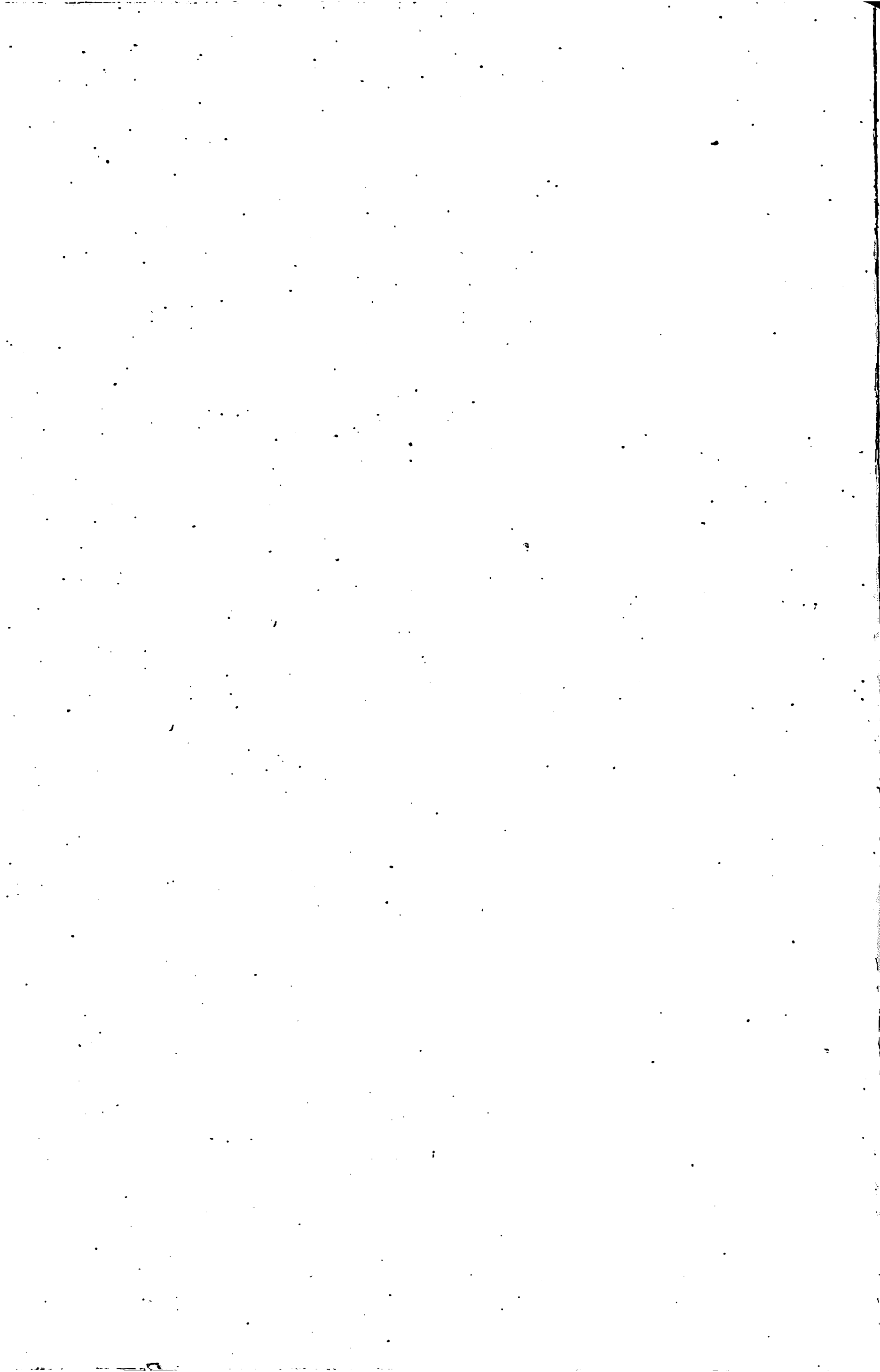




न्ति सुख सोपान

(निर्माण एवं अध्यात्मचिन्तन का पथप्रदर्शक)

आचार्य दिवाकर दत्त शर्मा

सह ग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प

शान्ति सुख सोपान

(चरित्र निर्माण एव अध्यात्मचिन्तन का पथप्रदर्शक)

आचार्य दिवाकर दत्त शर्मा



त शोध संस्थान:
भारती विहार मशोबरा. शिमला - ७
हिमाचल प्रदेश

मू. ७/-

प्रकाशक :

प्रो. केशव शर्मा
सचिव. संस्कृत शोध - संस्थान



मुद्रक :

भारती मुद्रणालय,
भारती विहार, मशोबरा, शिमला - ७

प्रस्तुत प्रकाशन और संस्थान

भारतीय शास्त्रों के अनुसार जिस प्रकार त्रिवेणी का स्नान सकल पाप नाशक माना गया है, उसी प्रकार भारत के मूर्धन्य विद्वान् विचारक, शिक्षाशास्त्री एवं त्याग व तपोमूर्ति संस्थान के संस्थापक-अध्यक्ष प. पू. आचार्य श्री दिवाकर दत्त जी, दिव्य-भावना सम्पन्न महामहिमामयी बुशहर राजमाता श्रीमती शान्ति देवी जी तथा उन के सुपुत्र संसद सदस्य सर्वश्री राजा वीर भद्र सिंह जी, के सम्मिलित प्रयास से यह शान्ति सुख सोपान भी त्रिवेणी संगम का ही सुफल है। अतः इस में सन्देह नहीं कि पू० पा० आचार्य जी की भावना आधुनिक भ्रान्त एवं अशान्त समाज को सुख और शान्ति की ओर ले जाने में सोपान (सीढ़ी सिद्ध हो।

यह पुस्तक, सस्कृत शोध संस्थान की 'पद्मसिंह ग्रन्थमाला' नामक तीसरी ग्रन्थमाला के प्रथम पुष्प के रूप में पाठकों की सेवा में प्रस्तुत की जा रही हैं। यह ग्रन्थमाला सर्वश्री राजा वीर भद्र सिंह, लोक सभा सदस्य के स्व० पू० पिता श्री पद्मसिंह जी बुशहर नरेश की पुण्य स्मृति में प्रारम्भ की गई है।

संस्कृत शोध संस्थान का उद्देश्य वेदों शास्त्रों और ग्रन्थों के विषयों पर ही 'अनुसन्धान करना मात्र नहीं है अपितु संस्कृत पर आधारित समाज और राष्ट्र के सभी उपयोगी विषयों पर देश को अपेक्षित साहित्य

प्रदान करना भी है। इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए संस्थान में विभिन्न ग्रन्थमालाओं के माध्यम से साहित्य प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया है। सस्थान की पहली ग्रन्थमाला पू. आचार्य जी के पितामह स्व. श्री श्री नारायण दत्त जी महाराज आयुर्वेदाचार्य षट्शास्त्री की पुण्यस्मृति में नारायण ग्रन्थमाला के रूप में सन् १९४८-४९ में आरम्भ की गई थी। इसके अन्तर्गत सहस्र शीर्षा सूक्त सटीक, श्री विष्णु स्तोत्र सटीक, वेदान्तसार प्रश्नोत्तर माला एवं भारती-स्तोत्र ये चार पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं। इसका पाँचवाँ पुष्प "फलादेश कल्पतरु" ज्योतिष शास्त्र का अपूर्व ग्रन्थ मुद्रित हो रहा है। सस्थान की दूसरी ग्रन्थमाला का नाम पञ्चानन ग्रन्थमाला है। इसका प्रथम पुष्प "सस्कृतकोश वाङ्मयम्" के प्रथम-भाग के रूप में प्रकाशित हो चुका है।

इस विशाल योजना को सुचारुतया चलाने के लिये एक विशाल भवन निर्माण की आवश्यकता है। इस भवन पर अनुमानतः १ ५०००० रुपये का व्यय होगा।

व्यय को स्थूल रूपरेखा-

२०००० रु. भूक्रय ५०००० रु. पहली मञ्जिल, ४०००० रु. दूसरी मञ्जिल, ४०००० रु. तीसरी मञ्जिल, प्रथम मञ्जिल में मुद्रणालय एवं कर्मचारी कक्ष, दूसरी में कार्यालय, पुस्तकालय, अतिथिशाला एव तीसरी में सस्कृत भवन। सभी देशवासियों से इस योजना में सहयोग प्रदान करने का विनीत आग्रह है।

इस निवेदन एव आग्रह के साथ ही श्री पद्म ग्रन्थमाला के प्रथम-पुष्प को देश वासियों की सेवा में भेंट करते हुए महान् हर्ष और गौरव अनुभव कर रहा हूँ।

— केशव शर्मा

अपनी बात

स्वाधीनता के पश्चात् हमने समस्याओं के समाधान ढूंढने आरम्भ किये। आज संसार भर की स्थिति विषम है उसमें अनेक विकट प्रश्नों का उलझाव पड़ा हुआ है। भारत में भी सामान्यतया वही स्थिति है। आज संसार भौतिक जगत् में विचरण करता हुआ शान्ति और सुख की खोज में जटा हुआ है किन्तु शाश्वत शान्ति का मार्ग भिन्न है उसके लिये एक ऐतिहासिक प्रत्यवेक्षण अत्यन्त सहायक हो सकता है। बैदिक युग का चिन्तन करते हुए हम अपने आपको स्वाभाविकतया एक दूसरे जगत् में अनुभव करने लगते हैं। बैदिक युग का नेता ऋषि था और वह अत्यन्त सरल, स्वाभाविक, शरीर और चेतना में स्वस्थ तथा अंतर्दृष्टि युक्त और आनन्दमय था वह प्रकृति के सौन्दर्य को अनुभव करने वाला उसका भक्त है। स्त्री सन्तान, धन धान्य आदि के लिये मुक्त कण्ठ से प्रार्थनाएं करता है और उन्हें वह यथाथ स्वीकारात्मक भाव में ग्रहण करता है पर फिर भी वह स्थूल प्रत्यक्षवादी नहीं, वह तो गम्भीर अध्यात्मवादी है। वह अन्तर्दृष्टि से वस्तुओं में निहित चेतन तत्व को जानता है और इन्हे उसकी ही अभिव्यक्ति अनुभव करता है। वेदमन्त्रों के वातावरण में निवास करना मानो आत्मा, परमात्मा और प्रकृति के वास्तविक आनन्द का उपभोग करना है। वैदिक ऋषि का गीत है :—

'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति'

'देखो इस प्रभु के सुन्दर जगत् को, जो न नष्ट होता है, न पुराना पड़ता है।' वह प्रार्थना करता है 'जीवेम शरदः शतम्' हम सौ साल तक जीयें। आँख, नाक, कान आदि के सबल रहते सौ साल तक जीयें। उसका कथन है —

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः
निधि विभ्रती वहुधा गुहावसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।'

'मैं पृथ्वी का पुत्र हूं, पृथ्वी मेरी माता है, वह मुझे अपनी विविध सम्पत्ति तथा गुप्त धन प्रदान करे' साथ ही वह आध्यात्मिक चेतना की उड़ानों का आनन्दपूर्ण वर्णन करता है। वह आध्यात्मिक जगत् का अधिक अन्वेषक है। वह वास्तविक रूप में मानव है इसके यह विशुद्ध संस्कार ही मानवता है। विश्व की मानव संस्कृति के लिये यह भाव अमूल्य देन हो सकती है। वास्तव में भारत अपनी यथार्थ साँस्कृतिक वृत्ति को अभिव्यक्त करके इस समय संसार को संकट से निकाल लेने की भी सामर्थ्य रखता है, परन्तु उसे अपने मध्ययुगीन अनुभवों का उचित शोधन करना होगा। जगत त्यागात्मक भावना को एक उच्चतर स्वीकारात्मक अध्यात्मवाद में संगठित करना होगा। जगत् अपने आप में आत्मा का विरोधी ध्रुव होते हुए तुच्छ भी है और त्याज्यभी परन्तु वास्तव में तो वह ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, एक प्रयोजनीय चरितार्थता हैं तव वह त्याज्य कैसे हो सकता है। निश्चय ही हम ब्रह्म को उसके सर्वाङ्गीण रूप में अङ्गीकार करना चाहेंगे तथा उसके साथ पूर्णतादात्म्य के लिये अभीप्सा करते हुए उसके सगुण और निर्गुण रूप में उसकी स्थिति और गति में उसे प्राप्त करना तथा अभिव्यक्त करना चाहेंगे।

उसके मिलन से ही शान्ति और सुख प्राप्त हो सकता है। शान्ति और सुख के सोपान हमारे पावन ग्रन्थ श्रीमदभगवदगीता रामचरितमानस, पुराण एवं महाभारतादि ही हैं। प्रस्तुत लघु पुस्तक में गीता प्रतिपादित कर्मयोग पर सामान्य चर्चा की गई है। गीता में मुख्य रूप से कर्मयोग के सम्बन्ध में २ बातों पर विशेष प्रकाश डाला गया है (१) किस प्रकार का कर्म करना चाहिये और (२) उसे करने की यथार्थ विधि क्या है। भगवान् श्री कृष्ण का अर्जुन से कथन है कि—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्मकर्तुमिहार्हसि ।

'इस लिये कौनसा कर्म करना चाहिये और कौनसा नहीं करना चाहिये, इसका निर्णय करने के लिये तुम्हारे पास शास्त्र ही प्रमाण है।' इस विषय में शास्त्र की आज्ञा जान कर तुम्हें उसी के अनुसार कर्म करने चाहिये।'

हम लोग इस जन्म से पहले असख्यवार इस ससार में जन्म ले चुके हैं। उन प्राक्तन जन्मों में हमें कभी मनुष्य योनि, कभी तिर्यग्योनि और कभी कीट पतङ्ग आदि की योनि प्राप्त हुई होगी। उन उन जन्मों में हम जो कुछ कर्म कर आये हैं उन्हीं के सस्कार इस जन्म में वासना रूप से हमारे चित्त में विद्यमान है और बहुधा हमें अनुचित कर्म करने को प्रेरित करते हैं। चरित्र निर्माण व अध्यात्म मार्ग में आगे बढ़ने के लिये यह आवश्यक है कि हम सारी इच्छाओं और आसक्तियों से सर्वथा मुक्त हो जाँय इच्छा और आसक्ति से मुक्त होने का एक मात्र उपाय है शास्त्र विहित कर्म करना, क्योंकि शास्त्रोक्त विधिनिषेध का पालन करने के लिये मनको वश में रखने और उन अनेक कर्मों से बचने की आवश्यकता है जिन की तरफ हमारी स्वाभाविक प्रवृत्ति है ऐसा करने से हमारी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का हमारे चरित्र पर जो प्रभाव पड़ता है कमजोर पड़ जाता है तथा कुछ ही समय के बाद हमारी इच्छाएं आसक्तियां भी कमजोर हो जाती हैं। इस प्रकार हमने प्राक्तन जन्मों में जो निषिद्ध आचरण किये हैं उनके प्रभाव से हम मुक्त हो सकते हैं। इस विषय में ईशोपनिषद मे इस प्रकार प्रतिपादन किया है

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभय सह।
अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

'जो मनुष्य विद्या और अविद्या दोनों को जानता है वह अविद्या के द्वारा मृत्यु को लाँघ कर विद्या की सहायता से शाश्वत आनन्द को प्राप्त करता है।'

विद्या का अर्थ है ज्ञान और अविद्या शब्द यहाँ कर्म का बाचक है। ब्रह्म विद्या का उपदेश ग्रहण करने के साथ ही साथ शास्त्रोक्त कर्म करते

रहना भी आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि शास्त्रोक्त कर्म करने से मनुष्य उन अनुचित एव अन्यान्य प्रवृत्तियों से छूट सकता है जो जन्म से ही उसके साथ हैं और जिनके कारण हमें बार-२ जमना और मरना पड़ता है। इस प्रकार अन्तकरण के शुद्ध होने पर ही ब्रह्म विद्या की यथार्थ प्राप्ति होने पर हमें ब्रह्म साक्षात्कार हो सकता है उक्त मन्त्र की यह व्याख्या 'श्री रामानुजाचार्य' की है श्री शकर भगवद्पाद ने ने दूसरे ढंग से व्याख्या की है।

अच्छी या बुरी योनि में भी कर्मानुसार ही जन्म होता है छान्दोग्य उपनिषद् के निम्न मन्त्र में यही बात कही गई है -

तद्य इह रमणोयचरणा अभ्याशो ह् यत्ते रमणोयां योनिमापद्येरन्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं बाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह् यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥

'जिनके अच्छे आचरण होते हैं वे अच्छी योनि अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य योनि में जन्म लेते हैं और जिनके अच्छे आचरण नहीं होते वे कुत्ते, सूअर, चाण्डाल आदि नीच योनियों में उत्पन्न होते हैं।'

भिन्न-२ परिस्थिति में जो-२ कर्म करने चाहिए उन सब का गीता में विस्तार से उल्लेख नहीं है इस का कारण यह है कि गीता कोई स्मृति ग्रन्थ नहीं, स्मृति ग्रन्थों में इसका सविस्तर वर्णन मिलता है कि अमुक स्थिति में अमुक मनुष्य को क्या करना चाहिए।

जो लोग कर्म मात्र को स्वरूप से छोड़ने के पक्ष में हैं उनका यह कहना है कि प्रत्येक कर्म बन्धन का कारण है क्योंकि प्रत्येक कर्म का फल हमें भोगना ही पड़ेगा। इसी लिए वे कर्ममात्र को छोड़ने के पक्षपाती है।' परन्तु गीता कहती है कि कर्म का सर्वथा त्याग सम्भव नहीं है, क्योंकि सर्वथा निश्चेष्ट हो जाने से जीना भी असम्भव है। इसके अतिरिक्त

कर्म के त्याग मात्र से कोई कर्मफल से मुक्त नहीं हो सकता। यदि कोई भोजन करना छोड़ दे परन्तु उसका मन भोजन के चिन्तन में लगा रहे तो यह चिन्तन ही एक कर्म हो जाएगा जिसका फल उसे अवश्य मिलेगा। हमें कर्म का फल क्यों भोगना पड़ता है इसका गूढ़ रहस्य गीता बतलाती है। कर्म के फल भोग में कारण है हमारी कर्म में आसक्ति, फल की कामना और यह भ्रममूलक बुद्धि कि अमुक कर्म हम करते हैं। यदि हम इन तीनो बातों को छोड़ दें तो हमें कर्म का फल नहीं भोगना पड़ेगा। शास्त्रोक्त कर्म इस पद्धति से करने पर अन्तः करण की शुद्धि होती है और इस प्रकार से किए हुए कर्मों का फल हमें नहीं भोगना पड़ता। बल्कि इस प्रकार के कर्म हमें पिछले कर्मों के बन्धन से भी मुक्त कर देते हैं।

इसी प्रकार राम चरित मानस, श्रीमद्‌भागवतपुराण व महाभारत से भी उपयोगी प्रसङ्गों का चयन कर इस पुस्तक में समावेश किया गया है। यथास्थान चुने हुए वेद मन्त्र भी समाविष्ट किये गये हैं। इस के पीछे एक पृष्ठ भूमि है। इस शरीर को जीवन में अनेक बार ग्रामों व नगरों में वैदिक व पौराणिक सत्सङ्गों द्वारा जनता जनार्दन की सेवा करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है तथा होता रहता है। अनुभव किया गया है कि सामान्य शिक्षित वर्ग के पास न तो शास्त्रों का मर्म समझने और स्वाध्याय करने की योग्यता है न अनेक प्रकार की जीवन साधन सम्बन्धी व्यस्तताओं के कारण खुला समय। यह समुदाय लघु और सरल उपदेश चाहता है जिसके स्वाध्याय से अध्यात्म, भक्ति, व चरित्र निर्माण सम्बन्धी जिज्ञासा पूरी हो सके।

कई बार आस्था रखने वाले अनेक श्रद्धालुओं ने कहा कि आपके महत्व पूर्ण प्रवचन कठिनाई से काफी समय बाद श्रवण करने के लिये उपलब्ध होते हैं जिस से पूर्ण रूप से लाभ प्राप्त नहीं हो रहा हैं।

मेरे विचार में इस प्रश्न के समाधान का यही मार्ग निकला कि चुने हुए प्रसङ्गों का एक लघु संकलन सामान्य पढ़े लिखे श्रद्धालु भक्तों के कल्याण हेतु प्रस्तुत किया जाय। इस उद्देश्य को लेकर कई वर्ष पहले यह संकलन लिखा गया था।

इस के प्रकाशन का श्रेय तपोमूर्ति ज्ञानमयी दिव्य शक्ति श्री १०८ श्रीमती शान्ति देवी जी राजमाता (बुशहर) को है। पुस्तक की पाण्डुलिपि का राज माता जी ने अध्ययन किया और इससे तृप्ति अनुभव की और कह कि और भी सभी लोग इससे लाभ प्राप्त करें इस लिये इस का प्रकाशन होना चाहिए ऐसा भाव मन में रख कर पुस्तक के अन्दर प्रकाशन व्यय के लिये अर्ध राशि सहायता सहित पाण्डुलिपि मुझे देदी। ऐसी अवस्था में इसे शीघ्र प्रकाशित करने का मेरे लिये एक बधन बन गया।

श्रीमती राजमाता शान्ति देवी

हिमाचल में बुशहर राज्य पहले से प्रतिष्ठित राज कुल रहा है। श्री १०८ स्व. राजा पद्म सिंह जी द्वारा शासन काल में किये गये प्रजा हित हेतु अनेक महत्व पूर्ण कार्य आज भी ऐतिहासिक समझे जाते हैं। स्व. राजा साहब महिमामयी श्री भीमा काली के परम उपासक थे मुझे १-२ वार इनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इन्हें सम्पूर्ण दुर्गा सप्तशती कण्ठस्थ थी। इनके मुखारविन्द से सस्वर शुद्ध मन्त्रोचारण सुन कर मैं बड़ा प्रभावित हुआ था। राजा श्री पद्म सिंह जी के स्वर्गवास के पश्चात् राजमाता शान्ति देवी जी तपोमय जीवन व्यतीत कर रही हैं। एक समय भोजन, गायत्री जाप, तर्पण, गीता पाठ, पुराण श्रवण, दान धर्म आदि पावन कर्मों से ही सारा जीवन व्यतीत हो रहा है।

सुपुत्र जननी

स्व राजा पद्म सिंह तथा राजमाता शान्ति देवी जी के तप का ही फल है जिससे राजा श्री वीर भद्र सिंह, लोक सभा सदस्य जैसा कुमार उत्पन्न हुआ है। श्री वीर भद्र सिंह जी की विद्वत्ता, सज्जनता, लोकसेवा

व दया दाक्षिण्य आदि गुणों से न केवल हिमाचल ही बल्कि सारा देश आज पू ी तरह से परिचित है ।

छोटी आयु में ही लोक सभा के लिये भारी बहुमत से प्रथम बार सदस्य चुना जाना तथा पश्चात् लगातार अब तक तीसरी वार सदस्य चुना जाना, लोक प्रियता, निष्ठा एवं आदर की दृष्टि ले पर्याप्त कहा जा सकता है ।

पाश्चात्य सभ्यता से घिरे आज के युग में भी इस राज परिवार में सज्जनों सत्पुरुषों व अन्य सामान्य समाज का आदर और सत्कार राम राज्य का स्मरण दिलाता है ।

राजा साहिब की यह भावना रहती है कि मेरे पास जिस इच्छा को लेकर जो सज्जन आते हैं उनकी कठिनाई हर सम्भव प्रयत्नों से दूर की जानी चाहिये । इसी चिन्तन में सोना, नहाना खाना सभी कुछ भूल जाते हैं प्रभु चिन्तन और आदर्श का सदा घ्यान रहता है ।

शिक्षण संस्थानों साहित्यिक प्रतिष्ठानों, निर्धन विद्यार्थियों को वृत्तिदान व अन्य वर्गों की अनेक प्रकार से सहायता कर रहे हैं । अपनी पूजनीया माता जी के त्याग और तप की गरिमा की पूर्ति हेतु सराहणा में र जमाता शान्ति देवी संस्कृत विद्यालय की स्थापना की गई है

श्रीमती राजमाता जी ने अपने महल का एक भाग विद्यालय के लिये समर्पित किया है आज के युग में इस प्रकार के दिव्य परिवार प्रायः वहुत कम देखे जाते हैं ।

प्रस्तुत संकलन

इस सकलन में रामचरित मानस के १८४ पद, श्रीमद्भागवत पुराण के ६७ श्लोक, गीता के २० पद्य महाभारत के १८ श्लोक व वेदों के १७ मन्त्र हैं । उक्त महा ग्रन्थ भारतीय संस्कृति के प्राणाधार हैं । इन सब में किञ्चित्मात्र सामान्य पढ़े लिखे या इन विषयों से बिलकुल अपरिचित

बन्धुओं का प्रवेश हो सके और उनको कुछ सत्प्रेरणा मिल सके युवा पीढ़ी का चरित्र निर्माण हो इस भावना को हृदय में रख कर संकलन तैयार किया गया है। परिवार के नर नारी व बच्चे बूढ़े इन पदों को यदि कण्ठस्थ कर लें तो भी जीवन में कुछ कल्याण, हो सकता है. आज कल विशाल ग्रन्थों को पूर्ण रूप से पढ़ने सुनने का न तो सभी के पास समय है न योग्यता। न ही महापुरुषों का सत्सङ्ग सदा कहीं मिल पाता है .

अपना अहोभाग्य समझूगा यदि बन्धु वर्गों को इस से आत्म ज्ञान का कुछ मार्ग मिल जायेगा। त्रुटियाँ होना मनुष्य का धर्म है मुद्रण व पाठ आदि में कोई भूल रह गई हो तो स्वय सशोधन करने की कृपा करें तथा तत्व ग्रहण कर इस शरीर को कृतार्थ कीजिए।

— आचार्य दिवाकर दत्त शर्मा



धर्मप्राण तपोमूर्ति श्री १०८ श्रीमती शान्ति देवी जी

राजमाता बुशहर (हि. प्र)

जन्म दिन कार्तिक २०३३



संस्थान की तुच्छ भेंट



विषय सूची

———



सत्संग का प्रभाव

भगवान् श्री वेद व्यास जब १७ पुराण तथा महाभारत एवं ब्रह्मसूत्र रचना समाप्त कर चुके तो उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि इतना सब कुछ करने पर भी आज मैं अपनी आत्मा को अशान्त अनुभव कर रहा हूं, यह सोच ही रहे थे कि उतने एकाएक महामुनि नारद उनके आश्रम में पधारे, उचित आदर पाकर व्यास जी से बोले:—

जिज्ञासितमधीतं च यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।
अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थं इव प्रभो ।। (भा. पु.)

प्रभो ! मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य ब्रह्म ज्ञान भी आपने ब्रह्म सूत्र का निर्माण करके प्राप्त कर लिया है, तथापि आपको आज मैं असन्तुष्ट अशान्त) सा अनुभव कर रहा हूं, क्या कारण है ।
श्री व्यास जी बोले: –

अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तम्
तथापि नात्मा परितुष्यते मे ।
तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधम्
पृच्छामहे त्वात्मभवात्मभूतम् ।। (भा. पु.)

महामुने ! आप जो कुछ कह रहे हैं वह सब उचित है किन्तु इतना होने पर भी आज मैं अशान्त हूं । इस अशान्ति को निवारण करने के लिए मैं आप से कोई उपाय जानना चाहता हूं । यह सुनकर महामुनि नारद

बोले— भगवन् व्यास ! इसमें सन्देह नहीं कि आपने पुराण, एवं महाभारत आदि का निर्माण करके राष्ट्र को अमूल्य इतिहास रत्न तथा राजनीति, धर्म्मनीति एवं अर्थनीति की अमूल्य निधि प्रदान की है किन्तु भगवद् भक्ति की विशद व्याख्या एवं भगवान् की महिमा का वर्णन मुक्त कण्ठ से अभी तक नहीं हुआ, जिससे आपकी आत्मा अशान्त है। भगवन् ! मैं यह भी साथ कह देता हूं कि प्रभु प्रेम का जागरण सत्संग और महापुरुषों की कृपा के बिना नहीं हुआ करता, मैं भी पूर्वजन्म में एक दासी के घर उत्पन्न हुआ तथा अपनी माता का इकलौता पुत्र था, मेरी स्नेहमयी माता ने मुझ पर अनुग्रह करके मुझे योगियों के आश्रम म सेवा करने के लिए भेज दिया वहां मैं बड़े आनन्द से रहने लगा। महर्षियों की सेवा कर उनके जूठे पात्रों को धोकर सत्कथा श्रवण करते हुए समय व्यतीत किया करता था। उसका परिणाम यह हुआ कि:—

तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने
प्रियश्रवस्यास्खलिता मति र्मम।
ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया
पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे॥ (भा. पु.)

परब्रह्म भगवत् चिन्तन में मेरी अत्यन्त अभिरुचि हो गई, एवं मुझे अनुभव हुआ कि वास्तव में यह संसार माया मोहमय एक अनित्य और झूठा है। भगवन् ! इसी प्रकार आश्रम में रहते हुए महापुरुषों के सत्संग से जो भगवत्प्रेम का अंकुर फूटा था वह दिनों दिन फूलता और फलता गया, कुछ दिनों बाद शरीर छूट गया, अनन्तर प्रभु की अपार कृपा से आज मैं नारद के रूप में अपनी वीणा की मीठी स्वर लहरियों से भगवत् महिमा का गायन करता हुआ त्रिभुवन में विचरण करता हूं, वास्तव में मनुष्य के जीवन का निर्माण सत्सङ्ग द्वारा ही हो सकता है। सत्पुरुषों के निकट बैठकर आत्मा को जो अतुलित आनन्द अनुभव होता है

वह सम्भव ही स्वर्ग के अनन्त वैभव पूर्ण हास विलासों का आस्वादन करने वाले देवताओं को प्राप्त होता होगा। अतः तुलसी जी ने ठीक ही कहा है:—

सात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुले न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत्सङ्ग॥

एक बार सात स्वर्गों के सुख को तथा मुक्ति के आनन्द को तराज़ू के एक भाग में रक्खा गया तथा दूसरे भाग में सत्सङ्ग से प्राप्त होने वाले सुख को रक्खा गया। किन्तु सत्सङ्ग से होने वाले आनन्द की समानता न हो सकी। अतः भगवन् ! अहो भाग्य है आज जो हम दोनों का समागम हुआ, मैं आपको यही प्रेरणा करूंगा कि यदि आप अपनी अतृप्त आत्मा को तृप्त करना चाहते हैं तो भगवत्प्रेम में अनुरक्त होकर भगवान् की अचिन्त्य एवं विचित्र लीलाओं का वर्णन करें, क्योंकि जब तक मनुष्य अपनी वृत्तियों को संसार की ओर अधिक दौड़ाता है तबतक उसे शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती और अशान्तात्मा सर्वदा दुःखी और असन्तुष्ट रहती है। श्री व्यास देव नारद जी के वचनामृत श्रवण कर अत्यन्त प्रसन्न हुए सचमुच जैसे एक भूले भटके राही को अपना मार्ग मिलने पर प्रसन्नता होती है।

श्री नारद, यह कहकर अपनी मधुर वीणा की झंकार करते हुए अपने आश्रम की ओर चल दिए एव श्री व्यास जी ने "स्वान्तः सुखाय" श्री मद्भागवत का निर्माण प्रारम्भ कर दिया।



कर्म योग

(१)

कुरुक्षेत्र के मैदान में जिस समय कौरव और पाण्डवों की सेना लड़ाई लड़ने के लिए तैयार हो गई तो उसी समय भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के रथ को दोनों सेनाओं के बीच स्थापित कर दिया, एवं अर्जुन को युद्ध करने के लिए कहा, किन्तु अर्जुन अपने सामने सभी गुरुजनों, पितामह, आचार्य, गोत्रज आदि बन्धुओं को देखकर महा मोह के समुद्र में, डूब गये दया के भाव में आकर मुझे क्या करना है यह भूल बैठे—जिस प्रकार चन्द्रकला के स्पर्श से चन्द्रकान्त मणि पिघल जाती है, उसी प्रकार दया के स्पर्श से अर्जुन द्रवित होकर बोले.—

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ।
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।।
वेपथुश्च शरीरे मे रोम हर्षश्च जायते । (गीता)

भगवन् ! यहाँ जो लोग इकट्ठे हुए हैं, उन सबको मैंने देख लिया। ये सब लोग तो मेरे ही गोत्र के दिखाई पड़ते हैं। यह ठीक है कि ये सब लोग युद्ध करने के लिए प्रस्तुत हैं, पर मेरे लिए भी युद्ध करने को प्रस्तुत होना कहां तक उचित होगा ? मैं तो युद्ध का नाम लेते ही घबरा जाता हूँ। मेरी अपनी ही सुध बुध बिल्कुल जाती रहती है। मन और बुद्धि दोनों चकराने लगते हैं। देखिये मेरा शरीर थर थर कांप रहा है, मुंह सूखने लग गया है और सारा शरीर मानों गला जा रहा है । मेरे सारे शरीर में रोमांच हो रहा है, यह दशा न केवल उस समय एक अर्जुन

को ही हुई थी अपितु सारे मनुष्य मात्र की सदा की यही दशा है प्रत्येक मानव सुख दुःख की भट्ठी में अज्ञान की आग से जल रहा है उसे विचार नहीं कि मुझे क्या करना है, इसीलिए श्री गुरु नानक जी ने संसार की ओर दृष्टिपात करते हुए एक बार कहा था ''नानक दुखिया सब संसारा' इस दुःख का सबने बड़ा कारण केवल मात्र मोह है, इस मोह की अद्भुत शक्ति अर्जुन की धनुष शक्ति से भी बढ़कर सिद्ध हुई, भ्रमर (भौंरा) कड़ी से कड़ी लकड़ी को भी सहज में छेद डालता है, किन्तु कोमल कमल की कली में वह फंस जाता है।

अर्जुन की ऐसी कायरता भरी अवस्था देखकर भगवान् श्री कृष्ण थोड़ा हंसे और कहने लगे कि अर्जुन ! तुम आज इन सबके मरने से भयभीत हो रहे हो ? भला मैं नहीं समझता तुम जैसे महारथी आज तक न समझ सके कि कौन किसको मार सकता है तथा कौन मरने वाला है एवं कौन अमर है जरा सावधान होकर सुनो:—प्रभु बोले-

न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।। (गीता)

जो कुछ स्वप्न में देखा जाता है, वह केवल स्वप्न में ही सच्चा और ठीक माना जाता है, किन्तु जब आदमी जागकर देखता है तब स्वप्न में देखी हुई चीजों का कहीं नाम मात्र भी नहीं रह जाता, इसी प्रकार तुम इस माया को भी समझो। जिस प्रकार किसी की परछाई पर चलाया हुआ शस्त्र उसके असली अंग पर प्रहार नहीं करता अथवा जिस प्रकार पानी भरे हुए घड़े के उलट जाने पर उसके साथ ही साथ पानी में पड़ने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब (परछाई) भी नष्ट हो जाता है, किन्तु उस प्रतिबिम्ब (परछाई) के साथ साथ असली सूर्य का नाश

हो जाने पर भी चैतन्य आत्मा का नाश नहीं होता। प्रिय अर्जुन ! जिन बावा, चाचा आदि बन्धुओं को तुम अपना समझ रहे हो वे भी वास्तविक रूप में सांसारिक साथी हैं क्योंकि "दारागारसुतादीनां सङ्गमः पान्थ-सङ्गमः" स्त्री, पुत्र आदि यह सब सम्बन्ध एक यात्रियों (मुसाफिरो) की टोली जैसा सम्बन्ध है, ठीक उसी प्रकार जैसे बहुत से यात्रियों (मुसाफिरों) का झुंड एक साथ चलता है तथा अपने-२ स्थान को प्राप्त कर प्रत्येक यात्री (मुसाफिर) एक दूसरे से स्वयं ही अलग होता जाता है एवं मार्ग में बहुत से नये साथी भी मिलते और बिछुड़ते रहते हैं। अतः तुम अब समझे होंगे कि यह सब कुछ एक कागज के फूल हैं।

प्रिय अर्जुन ! आप क्षत्रिय वीर हो, क्षत्रियों ने जब जब अन्याय देखा उनका शस्त्र पुत्र पर भी प्रहार करने से न रुका। "न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः" धीर पुरुष वही कहलाते हैं जो न्याय एवं सच्चाई से जीवन की लड़ाईयां लड़ते हैं। इसलिए मैं तुमको फिर सच्चे हृदय से कहता हूं कि:—

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥ (गीता)

यदि आज इस युद्ध में तुम शस्त्र रख दोगे तो अपना वह यश खो बैठोगे जो तुम्हारे पूर्वजों ने संग्रह किया था। संसार दुर्वचन कहेगा और शाप देगा, एवं महापातक तुम्हें घेरेंगे। जैसे विना पति की स्त्री सब प्रकार से अपमानित होती है, उसी प्रकार स्वधर्म (क्षत्रिय धर्म) का आचरण न करने पर जीवित अवस्था में ही तुम्हारी भी दशा होगी। अतः इस समय की परिस्थिति के अनुसार एक बुद्धिमान् पुरुष के नाते जो कुछ तुम्हें करना हैं उसके लिए तैयार हो जाइये।



आदर्श भ्रातृप्रेम

भगवान् श्री राम और सीता वनवास जाने के लिए तैयार हो गए, उधर लक्ष्मण जी के कानों में भी यह सूचना जल्दी ही पहुँच गई, उस समय की लक्ष्मण जी की दशा का वर्णन करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं:—

समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए।
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा।।
(रा. मा.)

जब लक्ष्मण जी ने ये समाचार सुने तब वे व्याकुल होकर उदास सा मुंह बनाकर उठ दौड़े, लक्ष्मण जी का शरीर कांपने लगा, रोम खड़े होने लगे, आंखों से आंसुओं की धार बहने लगी। लक्ष्मण अपने आपको संभाल न सके और राम के प्रेम से अधीर (बेकाबू) होकर उनके पांओं में लिपट गये।

श्री लक्ष्मण जी के हृदय में संशय खड़ा हो गया कि न जाने श्री राम मुझे क्या आज्ञा देंगे अर्थात् कहीं साथ ले जाने से निषेध तो नहीं करेंगे। अपने प्यारे भाई की यह दशा देखकर श्री राम बोले:—

बोले बचनु राम नय नागर। सील सनेह सरल सुख सागर।।
तात प्रेमवस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू।।
(रा. मा.)

अतिबुद्धिमान् एवं अच्छे स्वभाव प्रेम, सरलता और सुख के समुद्र श्री रामचन्द्र जी बोले—प्रिय लक्ष्मण! मेरे साथ चलने का फल तुम्हें अच्छा नहीं रहेगा, तुम भाई के प्यार में इतने अधीर (बेकाबू) मत हो

जाओ। बुद्धिमान् पुरुष वही होते हैं जो किसी काम को आरम्भ करने से पहले उससे होने वाली अच्छाई और बुराई के विषय में सोच लेते हैं। इस समय दो अड़चने बड़ी भारी हैं, एक ओर महाराज (पिता जी) की बृद्धावस्था है, दूसरे भाई भरत और शत्रुघ्न इस समय अयोध्या में नहीं हैं। ऐसी अवस्था में यदि मैं तुमको साथ लेकर वन जाऊं तो अयोध्या सभी तरह से अनाथ हो जायेगी। गुरु, माता, पिता, प्रजा, और कुटुम्ब सभी पर दु:ख का भारी बोझ आ पड़ेगा. अत: मैं तुमको यही कहूंगा कि:—

रहहु करहु सब कर परितोषू।
नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥

(रा. मा.)

प्रिय लक्ष्मण ! मैं पुन: तुमको यही कहता हूं कि तुम अयोध्या में रहो एवं अपनी सेवा से सबको सन्तुष्ट करो। यदि ऐसा नहीं होता तो बहुत बड़ा दोष खड़ा हो जायेगा। हमारे शास्त्र यह बतला रहे हैं कि जिस राजा के राज्य में प्यारी प्रजा दुखी रहती है, वह राजा अवश्य घोर नरक में पड़ता है, प्रियवर ! मुझे और किसी बिषय की विशेष चिन्ता नहीं है केवल अपनी प्यारी प्रजा की चिन्ता है कि कहीं हमारे चले जाने पर प्रजा की सेवा में कोई कमी न आ जाये। भगवान् श्री राम का वचन सुनकर श्री लक्ष्मण बड़ी कठिनाई से बोले:-

धरम नीति उपदेसिअ ताही।
कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरन रत होई।
कृपा सिन्धु परिहरिअ कि सोई॥ (रा.मा.)

दीनबन्धु ! यद्यपि आप मुझे धर्म और नीति के वचनों से समझा रहे हो, किन्तु इस प्रकार तो उसे समझाना चाहिए जिसके अंदर स्वार्थ भरा हो। प्रभो ! मैं उन भाइयों में से नहीं हूँ जो धन सम्पत्ति आदि के लोभ में पड़कर प्यारे भाई के साथ शत्रुता ठानकर रक्त के प्यासे बन जाते हैं, आप जरा मेरे हृदय से तो बूझिए, मैं आप की और शास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध नहीं चल रहा हूँ। शास्त्रों में तो ऐसा लिखा है कि "भ्राता मरुत्पतेः मूर्तिः" अर्थात् भाई वायु देवता की मूर्ति है। लोग भले ही इसको गप्प समझें किन्तु मैं तो ऐसा समझा हूँ कि जिस प्रकार जहाँ वायु न हो वहाँ आदमी साँस नहीं ले सकता यहाँ तक कि जीता नहीं रह सकता, इसी प्रकार एक सच्चा भाई अपने प्यारे भाई के वियोग को सहन नहीं कर सकता। इसीलिए शास्त्रों में भाई को वायु देवता की मूर्ति के समान माना गया है। अतः प्रभुवर ! मेरा तो मन, वचन, और कर्म से आपके चरणों में ही प्रेम है। क्या अब भी मुझे आप साथ न ले जाओगे ?

भगवान् श्री राम ने श्री लक्ष्मण जी के प्रेम से भरे वचन सुनकर लक्ष्मण को छाती से लगाया और कहा लक्ष्मण ! यदि तुम्हारी ऐसी ही प्रतिज्ञा है तो जाकर माता सुमित्रा से आज्ञा माँग लाओ। श्री लक्ष्मण यह सुनकर जल्दी ही माता सुमित्रा के चरणों में पहुंचे किंतु डर के मारे कुछ बोलते नहीं, मन में डर है कि कहीं माता मुझे साथ जाने से रोक न दे। फिर भी ढाडस बाँधकर अपनी सारी बात माता सुमित्रा से कह डाली। माता सुमित्रा सुनते ही बहुत प्रसन्न होकर बोलीः—

पुत्रवती जुबती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बांझ भलि बादि बिआनी।
राम बिमुख सुत तें हित जानी॥ (रा.मा.)

पुत्र लक्ष्मण ! आज मैं तुम जैसे पुत्र को पैदा करके सचमुच बेटे वाली हुई हूँ। असली रूप में वही स्त्री संसार में कहलाती है जिसका बेटा भगवान् का भक्त हो। लक्ष्मण ! तुम्हारे सामने भाई के रूप में भगवान् राम खड़े हैं। आज तुमने संसार को यह सिखा दिया है कि भाई भाई को आपस में कैसा वर्ताव करना चाहिए। मैं तो कहूँगी कि स्त्री जाति को राम और लक्ष्मण जैसे बेटों को पैदा करना चाहिए, यदि ऐसा नहीं तो उनका बाँझ रहना ही अच्छा है। यह मनुष्य के कल्याण के लिए मानस का स देश है।

--०--

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ॥

(ऋ १०, १९१, २)

परस्पर मिल कर रहो। परस्पर संवाद किया करो। तुम्हारे मन एक दूसरे को समझा करें। यही तुम्हारा सेवनीय कर्त्तव्य है। पूर्व देवता भी मिल कर इसी का अनुशीलन करते रहें है।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम् ॥

(अ. ३, ३., २)

पुत्र माता का आज्ञाकारी और माता के साथ मिले हुए मन वाला हो। पत्नी पति से मीठी और शान्तिप्रद वाणी बोले।

—:०:—

महापुरुष

जब महाभारत की लड़ाई समाप्त हो चुकी एवं उस लड़ाई में पाण्डवों और कौरवों के बहुत सारे प्रसिद्ध महारथी स्वाहा हो गए तथा पराक्रमी भीमसेन ने अपनी गदा से दुर्योधन की टाँगें तोड़ डालीं तो कौरवों के ऊपर बड़ी भारी आपत्ति को देखकर कौरवों के हितैषी द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने पाण्डवों का बीज नाश करने के लिए अंधेरी रात में जाकर सोये हुए द्रौपदी के पाँचों बेटों की हत्या कर डाली। सुबह होते ही यह दुःख देने वाली सूचना द्रौपदी के कानों में पहुंची, सुनते ही द्रौपदी शोक के समुद्र मे डूब गई. उस समय की अवस्था का वर्णन करते हुए व्यास जी कहते हैं:—

माता शिशूनां निधनं सुतानाम्
निशम्य घोरं परितप्यमाना।
तदारुदद्वाष्पकलाकुलाक्षी
तां सान्त्वयन्नाह किरीटमाली ॥ (भा. पु.)

जब द्रौपदी को पुत्रों के मारे जाने का समाचार मिला तो वह विह्वल हो उठीं तथा जोर से रोना प्रारम्भ कर दिया, अर्जुन पास में बैठे थे, यह दशा देखकर अर्जुन बड़े हैरान हुए तथा द्रौपदी को उत्साह देते हुए बोले द्रौपदी! चिन्ता मत करो मैं उस दुष्ट का सिर जिसने इन बालकों की हत्या की है काट कर तुम्हारे पास लाता हूँ। उसकी खोपड़ी का आसन बना कर उस पर तुम्हारा स्नान करवा कर पुत्र शोक

को शान्त किया जायेगा। इतना कहकर अर्जुन अपने अस्त्र शस्त्र लेकर रथ में बैठ कर अश्वत्थामा की खोज में निकल पड़े। थोड़ी दूर जा कर अर्जुन ने अश्वत्थामा को घेर लिया। अश्बत्थामा ने अपने बचने का जब कोई उपाय न देखा तो अर्जुन के ऊपर ब्राह्मास्त्र छोड़ डाला। (अस्त्र उन्हें कहते है जो मन्त्र से चलाए जाते हैं शस्त्र उन्हें कहा जाता है जो बिना मन्त्र हाथ से ही चलाए जाते हैं।)

अर्जुन ब्रह्मास्त्र का भयङ्कर प्रभाव देखकर घबरा गये। अर्जुन ने अनेक प्रकार से ब्राह्मास्त्र को शाँत करने का यत्न किया किन्तु कोई सफलता न मिली। असफल होकर अर्जुन श्री भगवान् की शरण में आये और बोले :—

कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानामभयंकर ।
त्वमेका दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ।। (भा. पु.)

प्रभो, आप भक्तों के रक्षक हो। जन्म और मृत्यु के दुःखों से आप हो सबको छुड़ाते हो। मैं भी इस सभय ब्रह्मास्त्र की आग से जल रहा हूं, प्रभो ? रक्षा करो।

भगवान्, श्री कृष्ण अर्जुन का क्रन्दन (चिल्लाना) सुन कर बोले। अर्जुन घबराओ मत यह अश्वत्थामा का ब्रह्मशास्त्र है मेरी सहायता से शान्त हो जायेगा। भगवान् की कृपा से अस्त्र शान्त हो गया। अश्वत्थामा पकड़े गये, उन्हें बाँध कर द्रौपदी के सामने खड़ा किया गया। द्रौपदी अश्वत्थामा को यह दशा देख कर बोली :—

मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः। (भा. पु.)

अर्जुन ? अश्वत्थामा को छोड़ दो। आप जानते ही हो कि

द्रोणाचार्य कौरवों और पाण्डवों दोनों के गुरु हैं, यह द्रोणाचार्य का पुत्र है तथा आपका गुरु भाई है। दूसरे सबसे बड़ी बात तो यह है कि मैं आज यह अनुभव कर रही हूँ कि पुत्र की मृत्यु से माता को कितनी पीड़ा होती है, अतः यदि अश्वत्थामा को मारा गया तो इसकी माता कृपी को भी इतना ही दुःख होगा। इसलिए मैं नहीं चाहती की कृपी को दुःख पहुंचे। शास्त्रों मे सत्पुरुष उन्हें ही कहा गया है जो अपने ऊपर अनेकों दुःख सहन कर बुराई का बदला भलाई से देते हैं। तुलसीदास जी ने सत्पुरुषों का बड़ा उत्तम लक्षण लिखा है:—

तुलसी सन्त सुअम्बु तरु. फूलि फलहि पर हेत।
इतते यह पाहन हनत. उतते वह फल देत॥

सत्पुरुष, पानी, वृक्ष. वह दूसरे के उपकार (भलाई) के लिए फूलते और फलते हैं। आपने कभी देखा होगा एक आदमी नीचे से वृक्ष के ऊपर पत्थर फेंकता है किन्तु वह वृक्ष ऊपर से पत्थर के बदले फलों की वर्षा कर देता है। अतः संसार में जो आदमी बुराई करता है उसके साथ भलाई से बर्ताव कीजिए इसका फल यह होगा कि बुराई करने वाला आदमी आपकी भलाई से प्रभावित होकर बुराई करना छोड़ देगा। इसी लिए पूज्य बापू जी (म. गांधी) बहुत बार कहा करते थे कि यदि कोई आपके मुंह पर चांटा लगाता है तो आप दूसरे चांटे के लिए अपना मुहं उसके आगे कर दो, वह स्वयं ही लज्जित होकर अपने किये पर पछतायेगा और आपके चरणों पर गिर पड़ेगा। द्रोपदी की क्षमा साधना ने विश्व के लिए एक अनोखे आदर्श का सूत्रपात किया है।

—:०:—

कर्मयोग

(२)

भगवान् श्री कृष्ण ने कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन को गीता का उपदेश दिया । असली रूप में यि देखा जाय तो यह संसार ही कुरुक्षेत्र का मैदान है । आदमी, पशु, पक्षी, आदि जितने भी जीव हैं वह सब एक प्रकार की लड़ाई ही तो लड़ रहे हैं । संसार में जिस दिन जीव जन्म लेता है, उसी दिन से दुनिया की कई तरह की अनोखी बातें उस जीव को लड़ाई लड़ने के लिए ललकारती हैं । यहां तक कि जानवरों तक में ऐसा देखा जाता है एक ही जंगल में दो शेरों का रहना कठिन होता है । किन्तु फिर भी आदमी सब जीवों में एक ऐसा जीव है कि उसने अपनी बुद्धि से सब जीवों को लड़ाई में जीत कर पथ्वी पर अपना राज्य स्थापित किया है हम देखते हैं मनुष्य के डर से दाड़, नाखून, और बड़ी २ पूछों से प्रहार करने वाले जानवर भी घने जंगल में जाकर पहाड़ों की गुफाओं में छिपे हैं अर्जुन ? जब मनुष्य होते हुए तुम एक इस छोटी सी लड़ाई से घबरा गये हो तो आदमी के जीवन में जो हर रोज की लड़ाइयां हैं उनका निपटारा कैसे होगा, अर्जुन, क्या तुमने कभी अनुभव किया कि लड़ाई के बगैर दुनिया में कोई काम ही नहीं, देखो—जन्म और मृत्यु को लड़ाई, स्वास्थ्य और रोग की लड़ाई, जवानी और बुढ़ापा की लड़ाई, सुख और दुःख की लड़ाई, प्रेम और हिंसा की लड़ाई, सम्पत्ति और विपत्ति की लड़ाई, लाभ और हानि की लड़ाई, यह सब कुछ लड़ाई ही लड़ाई तो है क्या तुम्हें कोई ऐसा

आदमी देखने में आ रहा है जो इन लड़ाइयों को नहीं लड़ता। मनुष्य तो बिना इच्छा से भी विवश होकर इन लड़ाइयों को लड़ता है और वह खुशी से लड़ रहा है। परन्तु इन लड़ाइयों में जब स्वार्थ का हिस्सा अधिक बढ़ जाता है तो यह लड़ाई मनुष्य को और उसके बन्धुओं को खा डालने के लिए तैयार हो जाती है। उस समय मनुष्य का हृदय डर, पीड़ा, और दुःख से व्याकुल हो उठता है, तब यह युद्ध हमें एक अचानक मिली हुई नई सी चीज मालूम होती है। मनुष्य की विचार शक्ति मोह से घिर जाती है। उसे यह भी समझ नहीं आता कि मुझे क्या करना है, इसी अवस्था को क्लीवता नपुँसकता कहते हैं। अर्जुन ! ठीक यही अवस्था तुम्हारी भी हो चुकी है। अर्जुन ! भला तुमसे मैं यह पूछता हूँ कि यदि तुम इस लड़ाई से बच जाओगे तो क्या दुनियादारी की लड़ाई से कहीं बच जाओगे ? बिल्कुल नहीं। तुमको पता है कि कुछ एक लोग दुनियादारी की लड़ाई से डर कर घर वार छोड़ कर जंगलों का सहारा लेते हैं कोई डर के मारे आत्म हत्या तक कर डालते हैं। ऐसा करने पर भले आदमी एवं बुद्धिमान् उन लोगों को बुरी दृष्टि से देखते हैं तथा उन्हें कायर कहकर पुकारते हैं। अतः तुम भी यदि इस लड़ाई से डरते हो तो मैं तो यही समझता हूँ कि :—

> अकीर्तिं च पि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
> संभावितस्य चाकीर्ति मंरणादतिरिच्यते ।। (गीता)

यदि तुम अपना धर्म छोड़ दोगे तो पापों में फंस जाओगे जब तक यह सृष्टि है तब तक तुम्हारा नाम कायरों की लिस्ट में लिखा

रहेगा। तुम्हारा रथ इस समय बिल्कुल लड़ाई के मैदान में खड़ा है तुम यहाँ से यदि निकलने की कोशिश करोगे तो यह लोग तुम पर बाणों की वर्षा करने लगेंगे। फिर भी अनेक प्रकार के संकट सहकर भी यदि तुम यहाँ से निकल जाओगे तो फिर उसके बाद तुम्हारा जीवित रहना भी मर जाने से कहीं बढ़कर खराब होगा। अर्जुन ! ऐसा अच्छा मौका वीर पुरुषों को बहुत कम मिला करता है। क्योंकि:—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ।। (गीता)

यदि तुम लड़ते लड़ते अपने प्राण दे दोगे तो तुम्हें स्वर्ग सुख प्राप्त हो जायेंगे। यदि जीत होगी तो भूमि का राज्य भोगोगे। तुमको दोनों ओर से लाभ ही लाभ है। शास्त्रों में लिखा है कि मनुष्य के प्राण दो तरह से निकलने चाहिए, लड़ाई में लड़ते हुए, या योग साधना के द्वारा तालु को फोड़ कर ऊपर की ओर जाकर प्रभु में लीन हो जाएं। लड़ाई में लड़ते-२ जो मरना है उसे वीर गति कहते हैं। योग साधना से जो शरीर छोड़ा जाता है, उसे ब्रह्मगति कहते हैं। मरना तो सभी ने है जो भी पैदा हुआ है। अतः अर्जुन जैसा सौभाग्य आज तुमको मिल रहा है ऐसा कई करोड़ वर्ष तपस्या करने से नहीं मिल सकता। इसलिए कर्तव्य पालन कीजिए।

—:o:—

भक्त पर कृपा

भगवान् श्री राम, सीता और लक्ष्मण वनवास यात्रा में जा रहे हैं। चलते चलते गङ्गा जी के तट पर पहुंच गए, गङ्गा बड़ी तेजी से वही जा रही थी विना किश्ती के पार उतरना कठिन था। भगवान् श्री राम के सामने बड़ी कठिन समस्या खड़ी हो गई, पार जाने के विषय में सोच ही रहे थे कि पास में ही एक केवट (मल्लाह किश्ती चलाने वाला) देखने में आया, भगवान् श्री राम उसे पार उतारने के लिए कहते हैं :--

मांगी नाव न केवटु आना।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन कमल रज कहुं सबु कहईं।
मानुष करनि मूरि कछु अहई॥ (रा. मा.)

श्री राम ने केवट से किश्ती मांगी किन्तु वह किश्ती नहीं लाता। वह कहने लगा कि प्रभो! मैंने आपकी सारी बातें सुन ली हैं जो लोग कहा करते हैं। मैंने लोगों से ऐसा सुना है कि तुम्हारे चरन कमलों की धूल कोई ऐसी बूटी है जो स्पर्श होते ही हरेक चीज को मनुष्य बना देती है। जिस प्रकार पारस पत्थर में लोहा लगते ही सोना बन जाता है उसी प्रकार आपके चरणों की धूल भी जिस चीज में लग जाती है

वह आदमी बन जाता है । मैं ऐसे ही कोई बनावटी बात नहीं कह रहा हूँ जरा सुनिए :—

छुअत सिला भई नारि सुहाई ।
पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
तरनिउ मुनि घरिनी जाई ।
बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ॥ (रा. मा.)

आपके चरणों की धूल छूते ही पत्थर की शिला एक सुन्दरी स्त्री बन गई । एक बार महर्षि गौतम और उनकी पत्नी अहिल्या में आपस में किसी बात पर झगड़ा हो गया, अर्थात् गौतम ने अपनी पत्नी अहिल्या के मन में कुछ बुरे विचार देखे, इस बात को देखकर वह क्रोध में आए एवं उन्होंने अहिल्या को पत्थर बनने का शाप दे दिया, और कहा कि जब तक भगवान् राम के चरणों की धूल तुम्हें स्पर्श नहीं करेगी तब तक पत्थर बनी रहोगी । क्योंकि तुम्हारे इतने पाप हैं जो भगवान् के चरणों के स्पर्श के बिना दूर नहीं हो सकते वही पत्थर की शिला थी जो भगवान् राम के चरणों के स्पर्श होते ही आदमी बन गई । असली रूप में देखा जाय तो जब तक भगवान् के चरण कमल मनुष्य के हृदय में नहीं पड़ते उस समय तक वह संसार के दुःखों से नहीं छूट सकता । वह बेचारा केवट भगवान् की लीला को न समझ कर भ्रम में पड़ कर ऐसा कह रहा है, तथा फिर कहने लगा कि प्रभो ! जब आपके चरणों की धूल ने पत्थर जैसी कठोर चीज को आदमी बना दिया तो मेरी किश्ती तो लकड़ी की है इसको आदमी बनने में तो देर ही न लगेगी । मुझे डर है कि कहीं मेरी किश्ती भी मुनि महाराज की स्त्री न बन जाए । मेरा तो कमाने खाने का यही साधन है मैं अपने बाल बच्चों को इस किश्ती की कमाई से ही पालता हूँ । अतः मेरी प्रार्थना है कि :—

एहि प्रति पालउं सबु परिबारू।
नहिं जानउं कछु अउर कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू!
मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥ (रा. मा.)

प्रभो! मैं फिर बारम्बार आप से यही प्रार्थना करता हूँ कि मेरी रोटी कमाने का धन्धा यह किश्ती आदमी न बन जाय, मैं किश्ती चलाने के अतिरिक्त कोई काम नहीं जानता। प्रभो! यदि आप अवश्य ही गङ्गा पार जाना चाहते हो तो मुझे पहिले अपने चरण कमल धो लेने दो। पांव धोने से वह धूल साफ हो जायेगी जिस धूल में हरेक चीज को आदमी बनाने की शक्ति है। प्रभो! मुझ पर दया करो मैं आप से पार उतारने के कुछ भी पैसे नहीं लूंगा। किन्तु किसी भी अवस्था में पांव धोये वगैर पार नहीं उतार सकता हूँ। भगवान् श्री राम केवट के प्रेम भरे अटपटे वचन सुनकर सीताजी और लक्ष्मण की ओर देखकर हंसे और केवट से बोले— भाई! तू वही कर जिससे तेरी किश्ती न जाय। जल्दी पानी ला और पैर धो ले। हमको देर हो रही है, जल्दी पार उतार दे। केवट के कान में यह आज्ञा के शब्द पड़ते ही केवट के आनन्द की सीमा न रही। तुलसी जी कहते हैं:—

अति आनन्द उमगि अनुरागा।
चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं।
एहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं॥ (रा. मा.)

वह केवट अति आनन्द और प्रेम में मस्त होकर भगवान् के पैर धोने लगा। केवट जैसा पुण्यशाली कौन हो सकता है देवता लोग भी इस घटना को देखकर आकाश से फूलों की वर्षा करने लगे। केवट ने

बड़े प्रेम से भगवान् श्री राम के पैर धोकर उस जल (चरणोदक) को अपने कुटुम्ब सहित पीकर अपना जन्म सफल कर लिया। उसी समय श्री राम जी को सीता लक्ष्मण सहित किश्ती में बिठाकर गङ्गा जी के पार पहुंचा दिया। पार पहुंच कर श्री राम केवट को उतराई के पैसे देने लगे, किन्तु केवट कहने लगा कि:—

नाथ आजु मैं काह न पावा।
मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी।
आजु दीन्ह विधि वनि भलि भूरी॥ (रा. मा.)

प्रभो! आज मैं नहीं कह सकता हूँ कि मुझे क्या मिला हैं जिसके लिये मैं कई जन्मों से भटक रहा हूँ वह सब कुछ आज मुझे मिल गया है। दोष, दुःख और दरिद्रता की आग आज बुझ गयी। मैंने आज तक बहुत कुछ कमाया किन्तु मुझे सन्तोष नहीं हुआ किन्तु आज मेरी सारी इच्छाएं समाप्त हो गई हैं। अब मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं। इसीलिए तो मीरा बहुत बार कहा करती थी:—

हे रि मैं तो राम रतन धन पायो।



आदर्श भक्त

जब कौरवों के पक्षपाती हत्यारे अश्वत्थामा को द्रौपदी के सामने लाया गया तो द्रौपदी ने अश्वत्थामा को प्राणदण्ड (मौत की सजा) देने के लिए निषेध कर दिया। किन्तु फिर भी भगवान् श्री कृष्ण की आज्ञा से यह निर्णय किया गया कि अपराधी को कुछ न कुछ थोड़ी सजा तो अवश्य दी जानी चाहिये नहीं तो संसार में हरेक आदमी बुराइयां करने लग जायेंगे। शासन सूत्र (हकूमत) खतरे में पड़ जायेगा। अतः अश्वत्थामा के माथे में एक मणि है उसको निकाल दिया जाए वह निशान अश्वत्थामा को सदा यह याद दिलाता रहेगा कि बुराई करने से यह फल मिला करता है, अश्वत्थामा के माथे से मणि निकाल कर जीता ही उन्हें छोड़ दिया गया किन्तु ऐसा करने से अश्वत्थामा की क्रोधाग्नि अति तेज हो गई। अश्वत्थामा ने पाण्डवों का कुल नाश करने के लिए एक और तरीका सोचा। अर्थात् पाण्डवों के पुत्र अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ है उसमें राजा परीक्षित जन्म लेने वाले हैं, यह सोचकर अश्वत्थामा ने उस गर्भ को नष्ट करने के लिए फिर अस्त्र छोड़ा। अस्त्र छूटते ही उत्तरा के पेट में आग फैल गई, वह चिल्लाने लगी। और तो कुछ न सूझा भगवान् श्री कृष्ण याद आये। खास कर भगवान् दुःख में ही याद आते हैं। भगवान् श्री कृष्ण की पाण्डवों के ऊपर बड़ी कृपा थी। स्मरण करते ही भगवान् आये और उन्होंने अश्वत्थामा के अस्त्र को शान्त कर दिया एवं उत्तरा के गर्भ की रक्षा कर दी। भगवान् श्री कृष्ण का

ऐसा अनौखा प्रभाव देखकर कुन्ती और द्रौपदी व सब पाण्डव बड़े प्रभावित हुए तथा भगवान् का धन्यवाद करने लगे। यह घटना देहली में हुई थी क्योंकि यह पाण्डवों की राजधानी थी। भगवान् कृष्ण पाण्डवों की अनेक प्रकार से रक्षा करके अब द्वारिका जाने को तैयार होते हैं। कुन्ती को जब पता चलता है कि भगवान् जा रहे हैं तो वह भगवान् के चरणों में लिपट जाती है एवं उनसे वरदान माँगती है :—

विपद: सन्तु न: शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भव दर्शनम् ।। (भा. पु.)

प्रभो ! आज तक आपकी अनेक लीलाओं को देखकर, तथा आपने पद २ पर जो हम लोगों की रक्षा की है, इन सब बातों को देखकर मुझे यह अनुभव हुआ है कि जब २ हम पर कोई संकट आया तो आप तुरन्त आये और हमें संकट से छुड़ाया। हम लोगों ने भी उस संकट में आपका सच्चे दिल से स्मरण किया। हमारे हृदय में आपके दर्शनों की प्यास है वह तब ही पूरी होती रहेगी जब हम पर सकट आते रहेंगे और आप छुड़ाने के लिए आयेंगे। अत: मैं आप से यही वरदान चाहती हूँ कि हम पर संकट आते रहें जिससे हम आपको न भूलें क्यौंकि दुनियां में खास कर ऐसा देखा गया है कि :—

जन्मैश्वर्यंश्रुतश्रोभिरेधमानमद: पुमान्।
नैवाहंत्यभिधातुं वै त्वामकिंचनगोचरम् ।। (भा. पु.)

बहुत से आदमी तो ऐसे हैं जो जन्म से ही बड़े घराने में पैदा हुए हैं तथा उनके पास लाखों करोड़ों रुपये पड़े हुए हैं जिससे वे भोग विलासों में पड़े हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो अपने को बहुत पढ़े लिखे समझकर बहुत बड़े आफिसर बन कर उसके नशे में चूर हैं उनके

हृदय में अभिमान है, ऐसे लोगों को आराम में पड़कर भगवान् का कभी स्मरण तक नहीं आता चिन्तन तो दूर रहा। हाँ जब कोई कष्ट या आपत्ति आती है तो फिर भगवान् जरूर याद आते हैं। आदमी मोहमाया में पड़ा है आदमी को यह ध्यान रखना चाहिए कि सुख की अवस्था में भी भगवान् का नाम न छूटे, फिर उस पर कोई कष्ट ही नहीं आ सकते। किन्तु ऐसे कोई बिरले ही होते हैं या जिन पर भगवान् की पूरी कृपा हो वही सुख में स्मरण करते हैं। इसीलिए भक्तवर कवीर जी भी कहते हैं कि :—

सुख के म थे सिल पड़े,
जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख को,
जो पल पल नाम रटाय ॥

इसलिए कुन्ती भगवान् से यही वरदान मांगती है कि हमें आपत्ति पड़ती रहे। आप लोग यह जानकर हैरान होंगे कि जिस भक्त के सामने भगवान् खड़े हैं वह उनसे क्या मांग रहा है। असली रूप में भगवान् का भक्त वही है जो केवल उनसे प्रेम की चाह रखता हैं, जो लोग भगवान् के आगे स्वार्थ में पड़कर बहुत सारी मांगे रख देते हैं वह उनकी भूल है। जब हम पैदा नहीं हुए थे फिर भी तो उन्होंने हमको बिना मांगे ही मकान वगैरा तैयार कर रखे थे। जिस प्रकार हमको वह सब कुछ बिन मांगे मिला है इसी प्रकार आगे भी बिन मांगे मिलेगा। ऐसी भावना रख कर केवल भगवान् से प्रेम करना चाहिए वह केवल प्रेम चाहते हैं।

कर्म योग

(३)

भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश दिया, न केवल यह उपदेश एक अर्जुन को ही दिया गया था अपितु दुनियाँ में रहने वाले हरेक आदमी के लिए गीता का कर्मोपदेश है । मनुष्य को कर्म करने में छूट दे दी गई है किन्तू फल में उसे छूट नहीं हैं। आदमी का कर्तव्य केवल सच्चाई से तथा मर्यादा के अनुसार काम करना है । भला यह भी तो निश्चिन है कि दुनिया के अन्दर ठीक ढग से जो काम करेगा उसको उसका फल अच्छा ही मिलेगा । यह कहावत प्रसिद्ध है कि "जैसा वीजो वैसा पाओ" अर्थात् खेत में यदि मक्की वीजी जायेगी तो मक्की ही पैदा होगी गेहूँ नहीं। अच्छे कर्मों का हिसाब है। अच्छे कर्म उन्हें कहा जाता है जिनके लिए शास्त्र आज्ञा देता हो । बुरे वे कहलाते हैं जिनके करने की शास्त्र में आज्ञा न हो । भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन को लड़ाई लड़ने के कर्म का उपदेश कर रहे हैं क्योंकि क्षत्रियों का धर्म है कि वह न्यन्य की लड़ाई हरेक से लड़ सकते हैं । मनुष्य कर्म योगी है उसे कर्म अवश्य ही करना होता है। श्री भगवान् कहते हैं कि :—

न कर्मणामनारम्भा न्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ।। (गीता)

यह तो निश्चित है कि जो भी मनुष्य बन कर आया है वह जन्म और मृत्यु से छूटने के लिए आया है, जिसको दूसरे शब्दों में मोक्ष कहा जाता है। किन्तु यह मोक्ष किस प्रकार मिल सकता है, इसके सम्बन्ध में शास्त्रों में यह लिखा है कि जब मनुष्य के शुभ अशुभ कर्मों का अच्छा या बुरा फल नष्ट हो जाता है तो वह मुक्त हो जाता है। अच्छे कर्मों का फल भोगने से नष्ट हुआ करता है। बुरे कर्म मनुष्य को कभी करने ही न चाहिए। कर्म किए बिना भी तो मनुष्य कभी नहीं रह सकता, यदि कोई आदमी ऐसा चाहे कि मैं संसार में कुछ नहीं करूंगा। सब कुछ घर वार छोड कर शरीर में राख मलकर कहीं जंगल म बैठ जाऊंगा. यह मनष्य की आत्मा की कमजोरी है, इस प्रकार का मनुष्य जीवन के किसी भी काम में सफल नहीं हो सकता। ठीक जिस प्रकार सोना आग में तपा २ कर खूब चमकदार बनता है बस इसी प्रकार आदमी का जीवन भी संसार के कर्म करते हुए निखरता जाता है। यदि हम चाहें भी कि हम कुछ नहीं करेंगे फिर भी तो वह स्वयं होता जा रहा हैं क्योंकि :—

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ (गीता)

अर्जुन ! देखो मनुष्य के जो शास्त्र में बतलाये हुए कर्म हैं, उन्हें वह किसी कारण छोड़ भी दे तो भी क्या इन्द्रियों के असली कर्म मर जात हैं। कान क्या कभी सुनने का काम छोड़ देते हैं ? या आंखों का तेज नष्ट हो जाता है ? या नाक के छेद बन्द हो जाते हैं और सूंघना छोड़ देते हैं ? अथवा क्या प्राणों (श्वासों) की गति रुक जाती है या भूख प्यास आदि इच्छाएं बन्द हो जाती है ? अथवा पैर चलना भूल जाते हैं ? इन सब बातों को तुम जाने दो। क्या जन्म और मृत्यु भी कभी टल सकती है ? यदि इनमें से एक बात भी नहीं हो सकती, तो फिर कर्मो को छोड़ देने से

ही क्या होगा । तत्त्व यह निकला कि जब तक संसार की माया का आधार बना हुआ है तब तक कर्मों का त्याग हो ही नहीं सकता । अर्जुन ! देखो, जब हम रथ पर बैठते हैं, तब चाहे हम कितने ही निश्चल होकर क्यों न बैठें, फिर भी हम हिलते डुलते रहते ही हैं । सूखे हुए पत्ते आप तो हिलते डुलते नहीं, पर जब जोर की हवा या आंधी चलती है तब वे भी आकाश में इधर उधर उड़ने लगते हैं । इसी प्रकार माया के द्वारा कर्मेन्द्रियाँ चञ्चल होती हैं जिस कारण मनुष्य के हाथ से भी अपने आप कर्म होते रहते है । अर्जुन ! अब तुम समझ गये होंगे कि कर्मों का त्याग नहीं हो सकता यदि कोई करता भी है तो वे फिर भी स्वयं होते रहते हैं ऐसी अवस्था में तुमको यही ठीक है कि :—

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मण: । (गीता)

अर्जुन ! तुम शास्त्र विहित युद्ध कर्म का त्याग न करो समय के अनुसार काम करना ही बुद्धिमानी कहलाती है । असली रूप में मनुष्य के लिए कर्मयोग ही सबसे अधिक जप, तप, एवं योग साधन है ।

सहयज्ञा: प्रजा: सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति: ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।। (गीता)

शास्त्र मर्यादा के अनुसार संसार मैं जो काम किए जाते हैं इसी का नाम नित्य यज्ञ है । जिस समय ब्रह्मा ने इस सृष्टि को बनया तो उसी समय मनुष्यों के लिए इस नित्य यज्ञ का भी उपदेश दिया । ब्रह्मा ने मनुष्यों को कहा कि यदि तुम सच्चाई से नेकी से दुनिया में काम करोगे तो तुम्हें बड़ी तपस्या करने की जरूरत नहीं, तुम्हें कर्म योग से मोक्ष मिला करेगा । अत: अर्जुन ! तुम क्षत्रिय वीर हो तुम्हें लड़ाई से हट जाने के लिए शास्त्र आज्ञा नहीं देता । यह सब कुछ सोच समझ कर अपना काम करो ।

शोक करने योग्य बातें

भगवान श्री राम के वनवास यात्रा में चले जाने के पश्चात् भरत को भी यह सूचना भेज दी गई, क्योंकि वे ननिहाल थे। भरत और शत्रुघ्न सूचना पाते ही अयोध्या लौट आये, किन्तु इधर तो चारों ओर शोक ही शोक छाया हुआ था। राम सीता और लक्ष्मण वन जा चुके थे एवं पुत्र के वियोग से राजा दशरथ की मौत हो चुकी थी। भरत और शत्रुघ्न यह अनोखे समाचार पाकर बहुत दुःखी हुए तथा कैकेयी को बार बार धिक्कारने लगे। यहाँ तक कि रामायण के शब्दों में कैकेयी के जीवन को जितना बुरा कहा गया है वह स्त्री जाति के लिए एक बड़ा भारी कलङ्क है किन्तु जो लोग ऐसा समझते हैं वह उनकी भूल है। कैकेयी ने भरत जैसे त्यागी एवं सुपुत्र बेटे को जन्म दिया है। जर्मनी के एक प्रसिद्ध विद्वान् ने लिखा है कि "कैकेयी के सहस्रों दोष हम उस समय क्षमा के योग्य समझते हैं, जब हमें इस बात का ध्यान होता है कि, वह भरत जैसे बेटे की माता थी"। बेचारे भरत बड़े दुःखी हुए उन्हें कुछ भी सूझता नहीं कि मुझे क्या करना है। "इधर कुआँ उधर खाई" वाली कहावत भरत जी के ऊपर घट रही थी। पास में ही महामुनि वशिष्ठ बैठे थे तथा भरत की ऐसी दशा देखकर बोले :—

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनि नाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु विधि हाथ॥

(रा. मा.)

भरत ! होनहार बलवान् हुआ करती है, नफा या नुकसान, जीवन या मरण, मान या अपमान, यह सब कुछ विधाता के हाथ है। बुद्धिमान् पुरुष इन बातों के सम्बन्ध में कभी शोक नहीं किया करते। शोक करने की बातें तो दुनिया में बहुत सारी हैं जिनके सम्बन्ध में शोक करना चाहिए।

सोचिअ विप्र जो वेद विहीना।
तजि निज धरमु विषय लवलीना।।
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना।
जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना। (रा. मा.)

अनेकों विद्वानों ने इस चौपाई की अनेकों व्याख्याएं की हैं वसिष्ठ जी भरत से कह रह है कि सबसे बड़ी शोक की बात यह है कि जिस देश के लोग शिक्षा ग्रहण न करें एवं शिक्षा के बिना मनुष्य जीवन किसलिए मिला है यह न समझ कर दुनिया में बुराई में डटे रहें। वास्तव में ब्राह्मणों को शिक्षा के सम्बन्ध में विशेष ध्यान देना चाहिए। वेद शब्द का अर्थ ज्ञान है। ज्ञान के बगैर मनुष्य यह नहीं समझ सकता कि आदमी और पशु में क्या फरक है। माता, बहिन, पत्नी, में क्या फरक है। अतः जहाँ के लोग विद्या नहीं पढ़ते तथा बालकों को विद्या नहीं पढ़ाते यह दोनों बातें सोचने योग्य हैं। भरत ! आप इतने बुद्धिमान होकर राजा की मौत से शोक कर रहे हो। शास्त्रों में तो यहाँ तक लिखा है कि :—

माता शत्रुः पिता वैरो येन बालो न पाठितः। (चा. नी.)

वह माता पिता नहीं शत्रु हैं जो अपने बालकों को विद्या नहीं पढ़ाते। सच्चे माता पिता कहलाने के वही अधिकारी हैं जो तन मन धन से अपने बालकों को शिक्षा देकर बुद्धिमान् बनाते हैं। वैसे तो

दुनियां में पशु पक्षी आदि भी पैदा होते रहते हैं और मरते रहते हैं भरत ! अब तुम समझ गए होंगे कि शोक की बात कौन सी है । भरत थोड़ा हंसे और बोले—महामुनि वसिष्ठ ! आप के मनोहर वचनों से मेरी चिन्ता दूर हो है रही कृपया और भी ऐसी बातें बतलाएं । यह सुन कर महामुनि बसिष्ठ बोले । भरत ! दूसरी बात शोक की यह है कि—बहुत से शासक अपनी प्रजा के ऊपर ठीक ढंग से शासन करना नहीं जानते । प्रत्येक शासक के अ.दर वह गुण होने चाहिए । आचार्य चाणक्य ने अपने अर्थ शास्त्र में लिखा है कि :—

तीक्ष्णमृदुदण्डौ परिभूयेते । (कौ. अ.)

जो शासक अपनी प्रजा की हरेक हालत न देख कर एक दम कठोर बन जाता है वह भी ठीक ढंग से शासन नहीं चला सकता, इसी प्रकार जो बिल्कुल नरम हो जाता है उससे भी उसकी प्रजा बिगड़ जाती है और प्रजा में अन्धेर छा जाता है । इसलिए शासक को ठीक एक अच्छे वैद्य या डाक्टर की तरह बनना जाहिए जो बीमार की नाड़ी पकड़ कर यह ज.न कर कि इस समय यह दोष बढ़ रहा है यह औषध देनी चाहिए, अर्थात् अब यहाँ कौड़ी औषध के बजाय मीठी औषध से काम चलेगा यह देख कर दवाई देता हैं । हकूमत करने वाले को भी अपनी प्रजा के साथ इसी प्रकार व्यवहार करना चाहिए । जो ऐसा नहीं करते उनके सम्बन्ध में भी शोक करना चाहिए । भरत ! तुम तो व्यर्थ ही राजा दशरथ की मौत का शोक कर रहे हो । जो जन्म लेता है वह मरता भी अवश्य है :—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च । (गीता)

——

धर्म क्या है

श्री मदभागवत के एक पद्य में धर्म की सरल और सुन्दर व्याख्या की गई है प्रायः देखा जाता है कि आज कल धर्म के नाम पर लड़ाई झगड़े और अनेक प्रकार की बुराइयाँ हुआ करती हैं वह इसीलिए कि किसी को भी अपने महापुरुषों के विचारों का पूरा पता नहीं है। महामुनि व्यास जी लिखते हैं कि :—

तप: शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः। (भा. पु.)

विश्व धर्म का उपदेश करते हुए वह कहते हैं कि तप, शौच, दया, एवं सत्य यह चार स्वरूप धर्म के हैं। प्रत्येक मनुष्य को यदि सुख से जीना है तो इन पर चलने की अति आवश्यकता है। तप उसे कहते हैं जो मन से वाणी से एवं कर्म से प्रभु का धन्यवाद एकान्त में बैठ कर किया जाता है। इसी प्रकार का तप उठते बैठते, चलते फिरते, सदा ही शुद्ध मन होकर किया जा सकता है। बहुत से लोग तप का नाम सुनकर प्रायः डर जाया करते हैं वे समझते हैं कि घर बार छोड़ना पड़ेगा, राख मलनी पड़ेगी, नंगे और भूखे रहना पड़ेगा। ऐसी बात नहीं है। आज मानव शास्त्रों के उपदेश को गलत तरीके से समझ कर झूठे जाल में फंसा है। आशा है सही प्रकार से समझ कर लोग तप से डरेंगे नहीं। अब शौच के सम्बन्ध में बतलाते हैं। शौच कहते हैं सफाई के लिए। दुनियां में कोई भी जीवात्मा ऐसा नहीं होगा जो गन्दा रहना चाहता हो। पशु-पक्षी आदि हरेक ही किसी न किसी तरीके

से अपनी सफाई कर लेते हैं। इसी प्रकार मनुष्य को अपनी सफाई का ध्यान रखना चाहिए। मनुष्य का खाना पीना सब कुछ शुद्ध होना चाहिए। मनुष्य जिस प्रकार रहता है तथा खाता पीता हैं उसका प्रभाव उसके मन पर पड़ता है अतः बाहर की शुद्धि के साथ मन भी शुद्ध हो जाता है। मनुष्य के जींवन का रहन सहन सब कुछ साफ सुथरा होना चाहिए। अतः सार यह निकला कि आदमी को अन्दर बाहर दोनौं रूप से साफ रहना चाहिए। आप अनुभव करते होंगे कि आदमी के आंख, कान, नाक आदि स्थानों से कितना बुरा मैल निकलता है। अतः इन सब मलों को पानी द्वारा धो कर प्रतिदिन साफ करना भी मनष्य का धर्म हैं। बाहर की सफाई तो इस प्रकार की जा सकती है किन्तु मन की सफाई भी तो चाहिए जो जरूरी है। महात्मा कबीर जी ने कहा है कि :—

न्हाये धोये क्या भया जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहे धोये बास न जाय ॥

मछली सदा पानी में रहती है किन्तु उसकी दुर्गन्ध नहीं जाती। अतः अन्दर की सफाई आवश्यक है उसके लिए शास्त्रों में यही लिखा है कि अन्दर की सफाई के लिए मनुष्य को सत्सङ्ग करना चाहिए तथा सदा अच्छे आदमियों के साथ मेल जोल रहन सहन बढ़ाना चाहिए। अब आप दूसरा धर्म शौच भी समझ गये होंगे।

तीसरा धर्म है दया। दया उसे कहते हैं जिसमें हम अपनी नेकी की कमाई में से दीन दुखियों की सहायता करें। यह न हो कि हमारा एक भाई भूखा और नंगा तड़फ रहा हो और हम खूब मजे में रेशमी गद्दों पर सो कर तथा अनेक प्रकार के बढ़िया २ पदार्थ खा कर आराम करें। विधाता ने दुनियाँ में सबको एक जैसा नहीं बनाया। अपने २ अच्छे बुरे कर्मों का फल सब भोग रहे हैं एक माता के पेट से कई बालक

पैदा होते हैं किन्तु सभी एक जैसे भाग्यशाली नहीं होते। यदि एक भाई भाग्य वाला हो दूसरा अभागा हो तो भाग्य वाले का कर्तव्य है कि वह उस अभागे की यथा शक्ति सहायता करे। यह भाईचारा संसार के साथ भी है। इसी को शास्त्रकारों ने दया का रूप दिया है और इसको भी धर्म बना दिया गया।

चौथा धर्म है सत्य अर्थात् सच्चाई। सच्चाई से बात करना। सच्चाई से काम करना। दुनिया के सारे के सारे काम सच्चाई से ही करना। उन्हीं को ही महात्मा कहा गया है जो मन कर्म और वाणी से सच्चाई से काम करें। संसार में तप, शौच, दया, एवं सत्य इन चार सिद्धान्तों का पालन करता हुआ प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन निर्वाह सुख और शान्ति से कर सकता है। श्री पूज्य बापू महात्मा गान्धी जी इस प्रकार के धर्म की जीती जागती मूर्ति हमारे सामने विद्यमान थे। अपने महापुरुषों के सच्चे पुजारी हम उसी अवस्था में कहला सकते हैं जब उनके अमर उपदेशों का आचरण करें।

——

मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम्।
प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ॥ (अथर्व ६, १०९, २)

हे मेधा शक्ति ! तू वेद का आधार है। वेद से तेरा विस्तार है। सब ऋषि तेरी महिमा गाते हैं। सब ब्रह्मचारी तेरा सेवन करते है। तू हम पर प्रसन्न हो और (तेरे द्वारा) देवता हमारी रक्षा करें।



कर्म योग

(४)

भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन को कर्म योग का उपदेश दे रहे थे। अर्जुन के हृदय में एक सन्देह उत्पन्न हुआ कि भगवान् कृष्ण कर्म करने के लिए तो मुझे बहुत जोर दे रहे हैं किन्तु मुझे अभी तक यह पता नहीं चला कि वे शुभ कर्म कौन से हैं, यह सोच कर भगवान् से कहने लगे कि प्रभो! कम से कम उन शुभ कर्मों को तो बतलाइये जिनसे मनुष्य मात्र का कल्याण हो। भगवान् अर्जुन की प्रार्थना सुन कर बोले :—

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥ (गीता)

अर्जुन! मनुष्य के कल्याण के लिए सबसे अच्छा कर्म यज्ञ है। यज्ञ शब्द मनुष्य के सारे जीवन के साथ सम्बन्ध रखता है। यज्ञ शब्द संस्कृत व्याकरण के अनुसार यज् धातु से बनता है। इसका अर्थ है (यज देवपूजा सङ्गतिकरण दानेषु) अर्थात् यज्ञ शब्द में तीन बातें मुख्य रूप में आती हैं। (१) देवताओं की पूजा, (२) मिल जुल कर प्रेम से रहना, (३) अपने पवित्र धन में से दीन दुःखियों को दान देना। इन

तीनों कर्मों का नाम यज्ञ है। अर्जुन ! तुमने कभी इसके सम्बन्ध में सोचा होगा कि मनुष्य के छोटे से कुटुम्ब में माता पिता का, भाई भाई का, पति पत्नी का, पिता पुत्र का, या और बन्धुओं का आपस में जो सम्बन्ध है इस में दो क्रियाएं काम कर रही हैं जिनको आदान प्रदान कहते हैं, अर्थात् लेना देना। पिता अपने बेटे को अच्छा गुणी विद्वान् बनाने के लिए तन, मन, धन, से सहयता करता है। इसमें एक आशा छिपी रहती है कि बेटा कमाने लगेगा तो बृद्धावस्था में हमको सुखी रखेगा। यही सोच कर बुद्धिमान् माता पिता अपनी सारी शक्ति बेटे को योग्य बनाने में लगा देते हैं। यह लेने देने का ढंग न केवल परिवार के लोगों में चल रहा है अपितु दुनिया में आपस में हरेक मनुष्य या हरेक जीवात्मा जितने भी हैं सब में चल रहा है। इसी प्रकार मनुष्यों का देवताओं के साथ भी सम्बन्ध है।

मनुष्य देवताओं के आगे अपनी श्रद्धा के फूल भेंट करता है और वे देवता प्रसन्न होकर मनुष्य की सारी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं। अर्जुन ! तुम्हें पता होना चाहिए कि समय पर ऋतुओं का होना ठीक समय पर वर्षा आदि सुख शान्ति के साधन उसी अवस्था में ठीक रूप से मिल सकते हैं जब उसके पीछे इन्द्र, वरुण, आदि देवताओं की तथा महापुरुषों की शुभ कामनाए काम करती रहें। मनुष्य के जीवन को खड़ा रखने के लिए सबसे बड़ी आवश्यक वस्तु अन्न है, अन्न के बिना मनुष्य स्वार्थ या पुरुषार्थ इन दोनों में से एक भी काम नहीं कर सकता। इस अन्न का प्रदान अग्नि, महापुरुष, और दीन दुःखिया के द्वारा हो सकता है। इसी को एक देव पूजा रूपी यज्ञ कहते हैं इसके करने से सारा राष्ट्र समृद्ध व सुखी हो जाता है :—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ (गीता)

मनुष्य का कर्तव्य न केवल अपना पेट पालना ही है उसके ऊपर सारे राष्ट्र का उत्तरदायित्व है अतः यदि मनुष्य अपना पवित्र अन्न धन आदि देवताओं के अर्पण करेगा तो देवता लोग समय २ पर बृष्टि करेंगे जिससे सारा संसार भर पूर अन्न प्राप्त कर सुखी होगा । इसी प्रक्रिया की संज्ञा आदान प्रदान लेना देना हैं । एक हाथ से रोटी नहीं पका करती है जहाँ मनुष्य देवताओं की कृपा से दुनिया में अनेक सुख भोग रहा है वहां उसका भी सहानुभूति के रूप में देवताओं के प्रति कुछ कर्तव्य होता है ।

यज्ञ का दूसरा रूप है सङ्गतिकरण । अर्थात् मिल जुल कर प्रेम से रहना । मिल जुल कर रहना भी एक यज्ञ है । इसको आज कल के शब्दों में आदर्श नागरिकता कहते हैं । एक राष्ट्र में रहने वाला कोई भी व्यक्ति किसी जाति या धर्म का क्यों न हो उसका परस्पर मिल कर रहने में ही कल्याण है । आपस में एक दूसरे के सुख दुःख में सहायता देना । एक ग्राम के निवासियों को नगर पड़ौस या समूचे राष्ट्र के निवासियों को आपस में मिल जुल कर रहने को सङ्गतिकरण कहते हैं ।

यज्ञ का तीसरा रूप है दान अर्थात् यदि मनुष्य १ रु. कमाता है तो उसमें से अधिक नहीं तो २५ पैसे या यथाशक्ति कुछ न कुछ दीनों की धर्म की, या राष्ट्र की सहायता के लिए समर्पण करे । अर्जुन ! इस प्रकार का यह यज्ञ चक्र है और यही सत्कर्म हैं। अर्जुन ! तुम्हें यह भी साथ बताए देता हूँ जो इसके अनुसार काम नहीं करता है भला उसे क्या होता है:—

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ।। (गीता)

भ्रम में पड़ा हुआ जो मनुष्य इस संसार में आकर इस कर्म यज्ञ को ठीक रूप से नहीं चलाता, उसके सम्बन्ध में तुम यह समझ लो कि वह केवल अपनी इन्द्रियों की लालसाएं पूरी करने के लिए ही इस लोक में आया है, और इसलिए वह पाप की राशि बन कर इस पृथ्वी का भार ही हुआ है :—

अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ।

बकरी के गले में लटके हुए स्तनों की तरह ऐसे पुरुषों का जन्म व्यर्थ ही है। अतः अर्जुन ! कर्मयोगी बनो।

—:०:—

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ।।

(ऋग् १०।७१।२)

जहां धीर पुरुष छाननी द्वारा सतुओं की तरह वाणी को शोध कर प्रयोग में लाते हैं, वहां मित्र-जन मैत्री रस का आस्वादन करते हैं। उनके वचनों में मगलप्रद लक्ष्मी निवास करती है।

त्वं नो मेधे प्रथमा गोभिरश्वेभिरागहि ।
त्वं सूर्यस्य रश्मिभिस्त्वं नो असि यज्ञिया ।।

— (अथर्व ६, १०८)

हे मेधा-शक्ति ! आओ, हमारे गोधन, अश्व-धन के साथ तुम भी विस्तार को प्राप्त होओ। आओ, सूर्य की किरणों के साथ दौड़ती हुई आओ। हम तुम्हारा आदर करते हैं।

राम नाम महिमा

भरत अयोध्या का राज्य छोड़ कर अपनी सेना सहित भगवान् श्री राम के आश्रम के लिए चल पड़े, मार्ग में निषादों (भिल्लों) के राजा गुह के साथ भेंट हुई। निषादराज भगवान् श्री राम का अनन्य भक्त था, उसने सेना सहित भरत का आगमन सुन कर यह समझा कि भरत ने राम से राज्य तो छीन लिया किन्तु अब राम और लक्ष्मण को मारने के लिए उनके पास सेना सहित जा रहा है, हम इसके साथ लड़ाई करके इसको सेना सहित नष्ट कर देंगे। गुह ऐसा सोच ही रहा था कि तत्काल पास बैठे एक बूढ़े ने कहा, गुह महाराज! आप भरत का स्वभाव जाने बिना यह क्या सोच रहे हैं किसी बात को पूरी तरह न जानकर उसके सम्बन्ध में चर्चा करना मूर्खता है। बूढ़े की बात सुनकर निषादराज गुह बोले :—

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा।
सहसा करि पछिताहिं विमूढ़ा ॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें।
बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें ॥ (रा. मा.)

यह बूढ़ा ठीक कह रहा है। जल्दी में (बिना विचारे) कोई काम करके मूर्ख लोग पछताते हैं। भरत जी का शील स्वभाव बिना समझे और बिना जाने युद्ध करने में बहुत हानि है। असली रूप में किसी के मन की अच्छाई और बुराई दर्शन मात्र से नहीं जानी जा सकती है इसलिए :—

लखव सनेहु सुभायं सुहाएं ।
वैर प्रीति नहिं दुरइ दुराएं ।।
अस कहि भेंट संजोवन लागे ।
कंद मूल फल खग मृग मागे ।। (रा. मा.)

भरत के सुन्दर स्वभाव से मैं उनके प्रेम को पहचान लूंगा। वैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपते। ऐसा कहकर गुहराज भेंट का सामान सजाने लगे। गुहराज ने भेंट के लिए कंद, मूल, फल, पक्षी और हिरन मंगवाये। भरत जी के साथ महामुनि वशिष्ट जी भी थे। निषाद राज ने वशिष्ट जी को प्रणाम किया, महामुनि जी ने गुहराज को आशीर्वाद देकर भरत जी को संकेत किया कि यह राम जी का परम मित्र है यह सुनते ही भरत जी आनन्द के समुद्र में डूब गए।

राम सखा सुनि संदनु त्यागा ।
चले उतरि उमगत अनुरागा ।।
गाउं जाति गुहं नाउं सुनाई ।
कीन्ह जोहारु माथ महि लाई ।। (रा० मा०)

यह राम का मित्र है, इतना सुनते ही भरत जी ने अपना रथ छोड़ दिया। वे रथ से उतर कर प्रेम की उमंग में झूमते हुए चले। निषाद राज गुह ने अपना गांव, जाति और नाम सुनाकर पृथ्वी पर माथा टेक कर प्रणाम किया। भरत जी ने जब यह देखा तो :—

करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ ।
मनहुं लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयं समाइ ।। (रा.मा.)

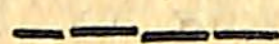
दण्डवत प्रणाम करते देखकर भरत जी ने उठाकर निषादराज को छाती से लगा लिया। हृदय में प्रेम समाता नहीं है, मानो स्वयं लक्ष्मण जी से भेंट हो गई हो। भरत निषाद राज से भेंट करके अपने आपको धन्य समझ रहे हैं, और कहने लगे कि :—

राम राम कहि जे जमुहाहीं।
तिन्हहिं न पाप पुंज समुहाहीं॥
यह तौ राम लाइ उर लीन्हा।
कुल समेत जगु पावन कीन्हा॥ (रा. मा.)

जो लोग राम राम कह कर जंभाई लेते हैं। आलस्य से भी जिनके मुंह से राम नाम का उच्चारण हो जाता है। पापों के समूह उनके सामने नहीं आते। फिर इस गुह को तो स्वयं श्री रामचन्द्र जी ने हृदय से लगा लिया और कुल समेत इसे जगपावन (जगत् को पवित्र करने वाला) बना दिया। वास्तव में सत्पुरुषों के सत्सङ्ग से या भगवान् की कृपा से मनुष्य क्या नहीं प्राप्त कर सकता, संसार तो एक ओर रहा किन्तु मुक्ति भी भगवान् के भक्त की दासी बन जाती है। भरत जी और बोले :--

करम नास जल सुरसरि परई।
तेहिं को कहु सीस नहिं धरई॥
उलटा नामु जपत जगु जाना।
बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥ (रा. मा.)

जब कर्मनाशा नदी का जल गङ्गा जी में पड़ जाता है तब कौन ऐसा होगा जो उस जल को सिर पर धारण नहीं करता ? सारा संसार जानता है कि उलटा नाम (मरा मरा) जपते जपते बाल्मीकि ब्रह्म के मान हो गये। जिस प्रकार लोहा पारस से लग जाने पर सोना बन जाता है उसी प्रकार एक भक्त भी भगवान् की कृपा पाकर मनुष्य होते हुए भी देवता बन जाता है। श्री भगवान् को अन्य जप, तप, नियम आदि उतने प्रिय नहीं है जितना वह प्रेम चाहते हैं। वाल्मीकि जी भगवान् के अत्यन्त प्रेमी भक्त थे उन्हें इतना भी बोध नहीं था कि राम कहना ठीक है या मरा, अतः मरा मरा, कहते ही भगवान् का स्मरण करते रहे, प्रभु उन पर प्रसन्न हो गए तथा उनको उस दिव्य ज्ञान का प्रकाश प्रदान किया जिसके द्वारा उन्होंने संस्कृत में आदि काव्य वाल्मीकि रामायण को लिखकर सारे विश्व को उस प्रकाश से आलोकित कर दिया। श्री राम नाम की महिमा बड़ी विचित्र है।



न तं विदाथ य इमा जजानान्यद् युष्माकमन्तरं वभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासु तृप उक्थशासश्चरन्ति ।।

(ऋग् १०।८२।७)

तुम उसे जानते हो जिसने यह सब कुछ उत्पन्न किया है। वह और है और तुम्हारे अन्दर है। लोग उसके स्तोत्र गाते हुए भी विषय वासनाओं से खचित रहने के कारण धुन्ध से घिरे हुए बोलना जानते हैं।

जीवन की सफलता

राजा परीक्षित को मुनि के बालक ने तक्षक (सर्प) द्वारा ७ दिन में मृत्यु होने का शाप दे दिया। राजा यह सुनते ही भयभीत हो गए, एवं अपना सारा राज्य भार पुत्र को सौंप कर गङ्गा के पवित्र तट पर पहुंच गये। उतने में एकाएक महामुनि शुक देव पधारे। राजा परीक्षित ने शुकदेव जी का उचित सत्कार कर उनसे प्रश्न किया :-

अत: पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ।
पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥
यच्छ्रोतव्यमथो जाप्यं यत्कर्तव्यं नृभि: प्रभो ।
स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विनिर्णयम् ॥
(भा. पु.)

महामुने ? आप सब से बड़े महायोगी हो, मैं आप से यह पूछता हूँ कि जब आदमी को अपने मरने के समय का पता चल जाय तो उसे क्या करना चाहिए, जिससे उसके दिल में मौत का डर न रहे। मैं आज से सातवें दिन शरीर छोड़ रहा हूँ। कृपा कर प्रभो ? मेरे कल्याण के लिए कुछ बतलाइये। महामुनि शुकदेव यह सुन कर बोले :-

श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रश: ।
अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः ।
दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्वभरणेन वा ॥
(भा. पु.)

परीक्षित ? मनुष्य के कल्याण के लिए शास्त्रों में बहुत कुछ बतलाया गया है किन्तु मनुष्य इन बातों की ओर जन्म भर ध्यान ही नहीं देता, यह बड़े खेद की बात हैं । मनुष्य अपने जीवन की रातें तो सोने में खो देता है एव दिन का समय अपने कुटुम्ब के पालन पोषण के लिये सामग्री जोड़ने में नष्ट कर देता है, इस प्रकार यह भली प्रकार जानता हुआ भी कि मैंने मरना अवश्य है, संसार की माया में मुग्ध हो कर भूल सा जाता है। परीक्षित ? तुम तो बड़े धन्य हो जिन्हें एक सप्ताह पहले मरने का पता लग गया है । किसी भी प्राणी को क्षण भर पहले भी मरने का पता नहीं लगा करता । सात दिन में तो मनुष्य बहुत कुछ कर सकता है । प्रभु का स्मरण एक क्षण भी यदि सच्चे प्रेम से किया जाय तो मनुष्य सदा के लिए संसार के बन्धनों से छूट जाया करता है। असली रूप में मनुष्य शरीर मुक्त होने के लिए ही बना है, और शरीरों के लिये यह सौभाग्य नहीं मिल सकता । अतः मैं तो तुमको यही कहूँगा कि प्रभु के ध्यान में उनका नाम जप करते हुए संलग्न होकर गङ्गा के तट पर बैठ जाइये । प्रभु ही मनुष्य को मृत्यु के डर से बचा सकते हैं। जिसने मनुष्य शरीर पाकर प्रभु का स्मरण नहीं किया उसका जन्म ही व्यर्थ है ।

विले वतोरुक्रमान्ये, न श्रृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वासती दादुंरिकेव सूत. न चोपगायत्युरुगाय गाथाः ॥
(भा. पु.)

जिस मनुष्य के कान प्रभु की पवित्र लीला को नहीं सुनते वे साँप के विल के समान हैं, एवं जिस मनुष्य की जिह्वा प्रभु का नाम नहीं जपती वह मैंडक की जीभ के समान व्यर्थ ही टर टर शब्द करने वाली है ।

भारः परं पट्टकिरोटजुष्टम्
अप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्याम्
हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥
(भा. पु.)

मणियों के मुकुटों से शोभित यह सिर भी भार है यदि वह प्रभु के चरणों में नहीं झुकता । इसी प्रकार यह भूषणों से लदे हुए हाथ भी मरे हुए पुरुष के हाथ के समान हैं यदि इनसे प्रभु की सेवा नहीं की जाती । परीक्षित ? मैं तो यही समझता हूं कि मनुष्य जीवन की सफलता इसी में है कि वह किसी भी अवस्था में प्रभु का स्मरण न छोड़ें । ऐसी अवस्था में चाहे किसी समय भी मौत आयेगी तो उसे मृत्यु से होने वाली पीड़ा और भय कुछ भी न हो सकेगा ।

—:o:—

कर्म योग
(५)

भगवान श्री कृष्ण कहते हैं कि अर्जुन ? यदि तुम कर्मयोग के सम्बन्ध म युक्तियों द्वारा नहीं समझे हो तो तुमको उदाहरण द्वारा समझाता हूँ।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥
(गीता)

उदाहरण के लिये जनक आदि राजर्षियों को देखो, जिन्होंने एक भी सत्कर्म का अनुष्ठान नहीं छोड़ा फिर भी मोक्ष प्राप्त किया। इस लिए, अर्जुन, कर्मयोग की ओर सदा पूरा ध्यान रखना चाहिए। कर्मयोग का अभ्यास करने से एक और भी लाभ होगा, जब हम शास्त्र अनुसार आचरण करें गे, तब और लोगों को भी अच्छे आचार की शिक्षा मिलेगी और उसकी ओर उनकी प्रवृत्ति होगी, जिससे संसार की आपत्तियाँ और कष्ट अपने आप दूर होंगे। देखो, जो लोग ब्रह्म-स्वरूप में पहुंच कर धन्य हुए हैं और जो पूर्ण रूप से निष्काम हो गये हैं, वही दूसरे लोगों को भी सच्चे रास्ते पर लगाते हैं। जिस प्रकार स्वस्थ पुरुष अन्धे को अपने साथ ले कर आगे चलता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुषों को अज्ञानियों को अपने साथ लेकर चलना चाहिए और उन अज्ञानियों को

अपने २ कर्मों का ज्ञान कराना चाहिए। अर्जुन ? मैं तुमको बार बार यही बतलाता हूँ कि समाज की संस्था को सब प्रकार से शुद्ध और स्वच्छ रखना कर्तव्य है। शास्त्रों में बतलाये हुये मार्ग से चलना चाहिए, सब लोगों को अच्छे रास्ते पर लगाना चाहिए, और किसी प्रकार भी उनमें यह प्रकट नहीं होने देना चाहिए कि हम समाज से अलग हैं। जो कर्म कर सकते हो उन्हें कर्म–त्याग का उपदेश देना शास्त्र विरुद्ध है।

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥

(गीता)

जो बालक दूध भी बहुत कष्ट से पी सकता हो, उसे पक्वान्न कैसे खिलाये जा सकते हैं ? इसीलिए, अर्जुन ? जिस प्रकार उस बालक को पकवान नहीं देना चाहिए, उसी प्रकार जिन लोगों में कर्म करने की सामर्थ्य हो, उन्हें कभी हंसी में भी कर्म–त्याग का उपदेश नहीं करना चाहिए। निष्काम ज्ञानियों (इच्छा रख कर कर्म न करने वालों) को भी उचित है कि वे ऐसे लोगों को अच्छे कर्मों का रास्ता दिखलावें, उनके सामने अच्छे कर्मों की प्रशंसा करें और स्वयं भी उसी प्रकार चल कर उनके सामने सुन्दर उदाहरण उपस्थित करें। इस प्रकार लोक संग्रह करने के लिए अर्थात् समाज संस्था को अच्छी स्थिति में रखने के लिए यदि कर्म किये जाएं तो वे मनुष्य को बन्धन में नहीं डालते। अर्जुन ? कभी तुमने देखा होगा कि बहुरूपिये राजाओं और रानियों का स्वांग बनाते हैं। और उनके अन्दर असली रूप में स्त्री या पुरुष का भाव नहीं होता, किन्तु फिर भी जिस प्रकार उन्हें अपना स्वाँग ठीक तरह से

दिखलाने के लिए स्त्री या पुरुष के से सब भाव दिखला कर लोगों को सन्तुष्ट करना पड़ता है, उसी प्रकार ज्ञानियों को भी संसार की भलाई के लिए अच्छे कर्म करने ही पड़ते हैं। कहने का आशय यह हुआ कि ज्ञानावस्था में भी कर्मों का त्याग नहीं हो सकता, कर्म करना हरेक अवस्था में आवश्यक है।

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढ़ांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥

(गीता)

जो लोग माया के फर में फंसे रहेंगे और इन्द्रियों की आज्ञा के अनुसार चलते हुए मेरे इस मत का तिरस्कार करेंगे, एवं जो इस मत को सामान्य समझेंगे, अथवा यह कहेंगे कि यह कोरावकवाद है तो उनके सम्बन्ध में तुम निश्चय से यह समझ लो कि वे मोह के मद में मत्त (पागल) हैं, विषयों के विष से भरे हुए हैं और अज्ञान के कीचड़ में डूबे हैं। जिस प्रकार जन्मान्ध (जन्म से अन्धे) को प्रातः काल होने का विश्वास नहीं होता, अथवा जिस प्रकार चन्द्रोदय का कौवे के लिए कोई उपयोग नहीं होता, उसी प्रकार कर्मयोग का यह उपदेश भी उन लोगों को अच्छा नहीं लगता जो संसार की विषय वासनाओं में आसक्त हैं। वे लोग अपने सारे जीवन को इन्द्रिय वासनाओं को सन्तुष्ट करने में ही नष्ट कर देते हैं। पतंग कभी भी दीपक का प्रकाश सहन नहीं कर सकता, जिस प्रकार पतंग दीपक को आलिंगन करने जाता है और सदा उसी में जल मरता है, उसी प्रकार विषयों का सेवन करने वालों की भी दशा होती है। इसलिए, अर्जुन ? तुम कर्मयोग का रास्ता अपनाओ, और ससार के लिए एक उदाहरण बन जाओ।

———

प्रभु विमुख की दुर्दशा

इस उपाख्यान में यह बतलाया गया है कि जो मनुष्य भगवान् से विमुख होता है उसकी क्या दशा होती है।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निजकर भूषन राम बनाए ॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक शिला पर सुन्दर ॥
(रा. मा)

एक बार सुन्दर फूल चुन कर श्रीराम जी ने अपने हाथों से भाँति भांति के गहने बनाये और सुन्दर स्फटिक (मणि) की शिला पर बैठ कर वे गहने बड़े आदर के साथ श्री सीता जी को पहनाये। भगवान् की विचित्र लीलाओं को देख कर इन्द्र के पुत्र जयन्त के दिल में यह कुविचार उत्पन्न हुआ कि मैं भी राम की शक्ति की परीक्षा लेता हूँ, यह सोच कर कौए का रूप धारण करके माया रचता है।

सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मन्दमति कारन कागा ।
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना ॥
(रा. मा,)

वह मूर्ख जयन्त भगवान् के बल की परीक्षा करने के लिये कौआ बन कर श्री सीता जी के चरणों में चोंच मार कर भाग गया। जब सीता

जी के चरणों से खून बहने लगा तो श्री रघुनाथ जी को मालूम हुआ, और उन्होंने तुरन्त ही धनुष पर बाण चढ़ा डाला, मन्त्र से प्रेरित होकर वह ब्रह्म बाण जयन्त के ऊपर छूट गया। जब जयन्त ने कोई आश्रय न पाया तो अपना असली रूप धारण कर अपने पिता इन्द्र के पास गया, किन्तु इन्द्र ने उसे श्री राम का विरोधी समझ कर अपने पास रखना स्वीकार न किया, अर्थात् पिता भी आज साथ देने के लिये तैयार नहीं। जयन्त निराश होगया, भगवान् के बाण से पीड़ित हो कर भयभीत सा ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि समस्त लोकों में भागता फिरा, किन्तु वहाँ पर जो उसकी दशा होती है उसका वर्णन करते हुए तुलसी जी लिखते हैं कि :—

काहूं बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही।।
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ विष सुनु हरि जाना।।
(रा. मा.)

वह जयन्त त्रिभुवन में जहां जहाँ भी गया वहां उसको रखना तो दूर रहा किन्तु किसी ने उसे बैठने तक के लिये नहीं कहा। है भी ठीक प्रभु के द्रोही को कौन रख सकता हैं। तुलसी जी कहते हैं कि जो प्रभु से द्रोह करता है उस के लिये माता मृत्यु के समान, पिता यमराज के समान और अमृत विष के समान हो जाता है।

मित्र करइ सत रिपु कै करनी। ताकह विबुध नदी वैतरनी।।
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुवीर विमुख सुनुभ्राता।।
(रा. मा.)

प्रभु द्रोही के मित्र भी सैंकड़ों शत्रुओं की तरह बन जाते हैं। देव नदी गङ्गा जी उसके लिये वैतरणी (यमपुरी की नदी) हो जाती है।

सारा संसार उसके लिये अग्नि से भी अधिक गरम (जलाने वाला) हो जाता है। आशय यह हुआ कि भगवान् से द्रोह करने वाले को कहीं भी संसार में स्थान नहीं हैं। जब जयन्त की यह दशा हो गई तो :—

नारद देखा विकल जयन्ता : लागि दया कोमल चित संता ॥
पठवा तुरत राम पहिं ताहीं। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही ।

(रा. मा.)

इतने में नारद जी ने जयन्त की जब यह दशा देखी तो उन्हें दया आ गई, क्योंकि संतों का चित्त बड़ा कोमल होता है। उन्होंने उसे समझाकर तुरन्त रामजी के पास भेज दिया। जयन्त नारद जी की आज्ञा पाकर भगवान् के पास पहुंचा और कहने लगा :—

आतुर सभय गहेसि पद जाई त्राहि त्राहि दयाल रघुराई ॥
अतुलित वल अतुलित प्रभुताई। में मतिमद जानि नहिं पाई ॥

(रा. मा.)

जयन्त भयभीत हो कर भगवान् के चरणों में लिपट कर बोला प्रभो? रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, आपके अतुलित बल और अतुलित प्रभुता (सामर्थ्य) को मैं मन्द बुद्धि जान नहीं पाया था। प्रभो? कृपा करो। श्री रघुनाथ? जयन्त की दुःख—भरी वाणी सुन कर प्रभावित हो गए, प्रभु के हृदय में दया आ गई उन्होंने उसे एक आंख से काना करके छोड़ दिया, क्योंकि मनुष्य की इन्द्रियों में आंख ही एक ऐसी है जो किसी की सुन्दरता देख कर मुग्ध हो जाती है। जयन्त ने भी श्री सीता जी को बुरी दृष्टि से देखा था। जो मनुष्य प्रभु से द्रोह करता है उसकी ऐसी दशा होती हैं।

———

जीवन सफलता के साधन

भगवान् कपिल ने महर्षि कर्दम के घर माता देवहूति के गर्भ से जन्म लिया था। आश्रम धर्म के अनुसार श्री महर्षि कर्दम कपिल जी को सुयोग्य समझ कर, स्वयं सन्यास लेकर बन चले गये। इसके पश्चात् भगवान् कपिलदेव अपनी माता देव हूति को साथ लेकर विन्दु सरोवर के किनारे कुटिया बना कर रहने लगे, एक दिन देवहूति ने कपिल जी से प्रश्न किया :—

निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिन्द्रियतर्पणात् ।
येन संभाव्यमानेन प्रपन्नाऽन्ध तमः प्रभो ॥

(भा. पु.)

प्रभो, मैं आज तक सदा इन नाश होने वाली इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने में लगी रही किन्तु यह सन्तुष्ट न हुई, यहां तक कि इच्छाएं अधिक ही बढ़ती गई। जिस प्रकार अग्नि में घृत डालने से उसकी ज्वाला बढ़ती ही जाती है शान्त नहीं होती। प्रभो ? अब मैं बहुत ही दुःखी हूँ कृपया मेरे लिये कुछ कल्याणकारी मार्ग बतलाओ। भगवान् कपिल देव माता के करुणा पूर्ण बचन सुन कर बोले :—

योग आध्यात्मिकः पुसां मतो निःश्रेयसाय मे ।
अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥

(भा. पु.)

मनुष्य यदि अपने जीवन को सफल बनाना चाहे, अथवा सुख और दुःख इन दोनों से होने वाले जन्म मरण के चक्र से मुक्त होना चाहें, या मानवता का दर्शन करना चाहे तो उसे अध्यात्म विद्या का अभ्यास करना चाहिए। अध्यात्म विद्या उन सिद्धान्तों को कहते हैं जिनके द्वारा मनुष्य के अन्दर अपने आपको तथा प्रभु को तथा संसार की वास्तविकता (असलीयत) को समझने की शक्ति का जागरण हो। माता जी! आपने सारा जीवन व्यर्थ नष्ट कर दिया, जरा सुनिए :—

चेत खल्वस्य वन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम्।
गुणेषु सक्त वन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये॥
(भा. पु)

जब मनुष्य का मन संसार के भोगों में लिपटा रहता है तो वह मन मनुष्य के बन्धन का कारण बन जाता है एवं जब वह मन प्रभु चरणों के ध्यान में लगा रहता है तो वह ही मुक्त होने का कारण बन जाता है। ठीक जिस प्रकार स्वाती नक्षत्र में गिरने वाली पानी की बूंद सीपी में गिर कर मोती बन जाती है तथा साँप के मुख में गिर कर विष (जहर) बन जाती है, उसी प्रकार यह मन भी संसार की वासनाओं में लिप्त होकर विष की पोटली बन जाता है एवं मनुष्य जीवन को नष्ट कर डालता है। यदि प्रभु चरणों में लगता है तो अमृत बन कर मनुष्य को भी अमर बना डालता है। परन्तु अब यह प्रश्न उठता है कि इस मनाराम को संसार की ओर से हटाकर प्रभु चरणों की ओर कैसे लेजाया जाये, इसके सम्बन्ध में श्री भगवान् कपिल देव जी बोले :-

तितिक्षण: कारुणिका: सुहृद: सर्व देहिनाम्।
अजातशत्रव: शान्ता: साधव: साधु भूषणा:॥
त एते साधव: साधव सर्वसङ्गविवार्जिता:।
सङ्गस्तेष्वथ ते प्राथ्र्य: सङ्गदोषहरा हि ते:॥
(भा. पु.)

मन को सच्चे मार्ग पर लगाने के लिये सब से उत्तम साधन सत्सङ्ग है। संसार में सहनशील, दयालु, सब प्राणियों से प्रेम करने वाले, शान्त सज्जन, विद्वान्, सन्त पुरुष विचरण करते हैं, मातः ऐसे सत्पुरुषों के चरणों का सत्सङ्ग करना चाहिए क्योंकि सत्सङ्ग करने में मन में बुरे विचार का सचार नहीं होता है। श्री गुरु नानक देव जी ने कहा है कि मेरा जीवन सत्सङ्ग से ही सुधरा है एवं मेरे अन्दर ज्ञान का प्रकाश हुआ है, वह कहते हैं :-

बिसर गई सब बात पराई, जब से साध संगत मोहि पाई ।
ना कोई वैरी नाहि बिगाना, सकल संगि हमको बन जाई ।
जो प्रभु कीना सो भल मान्यो, एक सुमति साधु से पाई ॥
सब महि रम रहिया प्रभु एक, पेख २ नानक बिगसाई ॥

माता जी सत्सङ्ग का प्रभाव ! और सुनिए :-

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो ।
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ॥
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि ।
श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥

(भा. पु.)

सत्सङ्ग में बैठ कर मनुष्य को कानों को मनोहर लगने वाली प्रभु महिमा ही सुनने में आती है ऐसी वैसी बातें वहाँ पर नहीं सुनी जाती। अतः सत्सङ्ग द्वारा मनुष्य को मुक्ति मार्ग का पता चलता है तथा मोक्ष देने वाले श्रद्धा, रति, और भक्ति, इन तीनों की वृद्धि होती है। अतः जीवन सफलता का पहला साधन सत्सङ्ग है।

कर्म योग

(६)

श्री अर्जुन बोले प्रभु ? आप मुझे जो कुछ समझा रहे हो वह सब मैंने अच्छी तरह से सुना, तो भी मेरे मन में कुछ बातें आई हैं, जो मैं आप से पूछता हूँ। अर्जुन प्रश्न करते हैं :—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥

(गीता)

हे देव ! ज्ञानी लोग भी आत्म ज्ञान की स्थिति से भ्रष्ट होते हुए, देखे जाते हैं और मार्ग छोड़ कर इधर उधर भटकते फिरते हैं, ऐसा क्यों होता है ? जिस प्रकार अन्धा धान्य और भूसे को अलग २ नहीं कर सकता, उसी प्रकार अच्छी और बुरी बातों के चुनने में कभी २ बुद्धिमानों को भी क्यों गड़बड़ी में पड़ते हुए देखा जाता है ? जो अपने स्वाभाविक कर्म के सब झगड़े छोड़ देते हैं, वे भी सारे संसार के बखेड़े अपने गले लगा कर तृप्त नहीं होते। जिन लोगों को वास्तव में बनों में रहना चाहिए, वे लोग भी आकर मनुष्यों के निवास स्थानों में रहने लगते हैं। यदि वे स्वयं आड़ में रहते, तो वे पापों को पूर्ण रूप से टाल सकते थे। फिर भी वही लोग स्वयं ही जान बूझ कर पापों का आचरण करने लगते

हैं। मन जिस वस्तु का तिरस्कार कर देता है, उसी का वह ध्यान लगाये रहता है और यदि उसे कोई निषेध करने जाय तो वह उलटे लड़ने को तैयार होता है। देखने में ऐसा जान पड़ता है कि ज्ञानियों पर भी बलात्कार हुआ है। इसलिये यह वलात्कार करने की शक्ति किस में है ? प्रभो ? आप कृपा कर यही बात मुझे बतला दें। अर्जुन की यह बात सुन कर श्री भगवान् कृष्ण बोले :—

> काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
> महाशनो महा पाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥
>
> (गीता)

अर्जुन ? जो तुमने प्रश्न किया है इसके सम्बन्ध में मैं बतलाता हूँ, सुनो ! अर्जुन ? यह बलात्कार करने वाले काम और क्रोध ही होते हैं। इनमें दया का लेश भी नहीं होता। वे काल के समान कठोर होते हैं। ये ज्ञान रूपी सम्पत्ति को घेर कर बैठने वाले काल सर्प हैं, अथवा ये विषयों की खाई के वाघ हैं, अथवा इन्हें ईश्वर भक्ति के मार्ग में डाका डालने वाले प्राणनाशक चोर ही समझना चाहिए। ये शरीर रूपी किले के पत्थर हैं। इनका अधिकार सारे संसार पर छाया हुआ है। ये रजोगुण से बने हुए राक्षस हैं और अज्ञान के अन्न से ही अपना निर्वाह करते हैं। वास्तव में इनकी उत्पत्ति रजोगुण से हुई है, पर जान पड़ना है कि तमो गुण ने प्रमाद और मोह आदि अपने स्वभाव धर्म इन्हें देदिये हैं। ये काम और क्रोध प्राण लेने वाले हैं, इसलिए मृत्यु की राजधानी में इनका बहुत सम्मान है। जब एक वार इनकी भूख शुरू होती है, तब सारा संसार भी इनके एक ग्रास भर को भी नहीं होता। ज्यों ज्यों इनका हाथ चलता जाता है त्यों त्यों इनकी आशा भी आगे से आगे बढ़ती जाती है। भ्रम,

तृष्णा, मोह, अहंकार, इनके साथ भी काम और क्रोध का लेन देन का व्यवहार रहता है। इसीलिए ये जिस तरह चाहते हैं, उसी तरह संसार को नचाते रहते हैं। अर्जुन ? काम क्रोध ने ही शान्ति को लूट कर माया रूपी भिखमंगिन का शृंगार किया है और साधू मंडली को भ्रष्ट किया है। इन्होंने सन्तोष रूपी बन को उजाड़ा है, धैर्य का किला तोड़ कर गिराया है, और आनन्द का पौधा उखाड़ कर फैंक दिया है। ये काम क्रोध जब एक बार अपना काम आरम्भ कर देते हैं, तब फिर किसीं प्रकार भी रोके नहीं रुकते। ये बिना पानी के ही डुबा देते हैं, बिना आग के ही जला डालते हैं और बिना शास्त्रों के ही मार डालते हैं। ये बिना जाल के ही पकड़ लेते हैं और अपने भारी बल के कारण किसी से हार नहीं मानते। अर्जुन ? सुनलिया काम और क्रोध का प्रभाव ! यही दो शत्रु है जो बड़े २ बुद्धिमानों को भी चक्कर में डाल देते हैं, किन्तु इस महा संकट ते बचने का भी एक उपाय है। यदि बह तुम्हें अच्छा लगे तो बतला दूं। सुनो :—

> तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
> पाप्मानं प्रजहि ह्येमं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥
>
> (गीता)

अर्जुन ? काम और क्रोध का मूल स्थान इन्द्रियों में होता है, ये दोनों इन्द्रियों द्वारा ही अपना शिकार खेलते हैं और इन्हीं इन्द्रियों से कर्म की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। इसलिए सबसे पहले इन इन्द्रियों को ही अपने वश में रख कर अच्छे कर्म करने चाहिए।

श्री राम का लक्ष्मण को उपदेश

श्री राम लक्ष्मण को ब्रह्म विद्या का उपदेश कर रहे हैं। श्री भगवान् राम वनवास के दिनों में गोदावरीं नदी के किनारे पत्तों की कुटिया बना कर रहने लगे एक दिन श्री लक्ष्मण भगवान् राम से प्रश्न करते हैं :—

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा।
कहहु ग्यान विराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया।

(रा. मा.)

प्रभो ? मुझे समझा कर ऐसी वातें बतलाइये, जिससे मैं सब कुछ छोड़कर आपके चरणों की ही सेवा करूं। ज्ञान, वैराग्य और माया का वर्णन कीजिये, और उस भक्ति का भी वर्णन कीजिये जिसके द्वारा आप प्रसन्न होकर अपने भक्त पर दया करते हैं।

ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाई।
जाते होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ।

(रा. मा.)

प्रभो ? ईश्वर और जीव में क्या भेद है यह भी सब समझा कर बतलाइये, जिससे आपके चरणों में मेरी प्रीति हो और शोक, मोह तथा भ्रम नष्ट हो जायें। श्री भगवान् राम श्रीं लक्ष्मण के यह वचन सुन कर

बड़े प्रसन्न हुए तथा लक्ष्मण को अपना प्रिय समझ कर बोले :—

थोरे हि महं सब कहउं बुझाई। सुन हु तात मति मन चित लाई।
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि वस कीन्हे जीब निकाया ॥
(रा. मा.)

प्रिय लक्ष्मण ? मैं थोड़े ही में समझा कर कह देता हूँ। तुम मन, चित्त और बुद्धि लगा कर सुनो। मैं और मेरा तू और तेरा, इसका नाम माया है। जिसने सारे जीवों को वश में कर रखा है। और सुनो :—

गो गोचर जहं लगि मन ज़ाई, सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ, विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥

प्रिय लक्ष्मण ? इन्द्रियों के विषयों को लेकर यह मन जहाँ तक जाता है, वह सब माया ही माया है। यह मन आंखों के द्वारा देखता है, कानों से सुनता है, नाक से सूंघता है, जिह्वा से अनेक प्रकार के रसों का स्वाद लेता है, एवं त्वचा (चमड़ी) द्वारा अनेक ॠतुओं के शीतल और उष्ण स्पर्शों का अनुभव करता है। ससार में जितनी भी इन्द्रियों द्वारा अनुभव की जाने वाली चीजें हैं यह सब नष्ट होने वाली हैं इसलिये माया भी अनित्य है, किन्तु यह माया भी दो प्रकार की है एक विद्या और दूसरी अविद्या। विद्या किसे कहा जाता है तथा अविद्या किसे कहा जाता है। यह तुम को मैं समझाता हूँ। सुनो :–

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा वस जीव परा भव कूपा ॥
एक रचइ जग गुन वस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निजबल ताकें ॥

लक्ष्मण, माया का पहला भेद अविद्या दोषों से भरपूर है, और

अत्यन्त दुःख रूप है, जिसके वश होकर जीव संसार रूपी कुए में पड़ा हुआ है । इसी को दूसरे शब्दों में मैं और मेरा तू और तेरा कहते हैं । याया का दूसरा भेद विद्या है. जिस के वश में तीनों गुण सतो गुण, रजोगुण एवं तमो गुण हैं, और जो जगत की रचना करती है । यह माया प्रभु की शक्ति से सब कुछ करती है अपना बल इसका कुछ भी नहीं है । उपनिषदों के शब्दों में इसको इस प्रकार समझाया गया है । सुनो :-

अविद्यय मृत्यु तीत्व विद्ययामृतमश्नुते ।

मनुष्य को जब मैं और मेरा इस की पहचान हो जाती है तो वह मौत पर भी विजय पा लेता है एवं त्रिगुण माया से भी आगे बढ़ कर ब्रह्म रूपी अमृत का आस्वादन करता है । लक्ष्मण ? अब तुम माया का रूप समझ गये होंगे, अब तुम को ज्ञान के सम्बन्ध में बतलाता हूँ सुनो:-

ग्यान मान जहं एकउ नाहीं । देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥
कहिअ तात सोपरम विरागी । तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥
(रा. मा.)

प्रिय लक्ष्मण ? ज्ञान वह है जिसमें मान आदि १८ दोष न हों, और जो सब में समान रूप से ब्रह्म को देखता है । उसी को परम वैराग्य-वान् कहना चाहिये जो सारी सिद्धियों को और तीनों गुणों को तिनके के समान त्याग चुका हो ।

———

भक्ति क्या है ?

भगवान् श्री कृष्ण के परम भक्त उद्धव भगवान् श्री कृष्ण से पूछते हैं प्रभो ? भक्ति, ज्ञान और वैराग्य आदि से प्रधान क्यों है ? कृपा कर मुझे यह समझाइये। उद्धव के वचन सुन कर श्री कृष्ण बोले। प्रिय उद्धव ?

"सात्वस्मिन् परम प्रेमरूपा"

प्रेम मूला है। प्रेम ही भगवान् का वह रूप है जिसको जीव सब से पहिले अनुभव करता हैं। सुनो :—

प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक।
ईश्वर का प्रतिविम्ब प्रेम है, प्रेम हृदय आलोक ॥

ज्यों ज्यों भक्त का प्रेम भगवान की ओर बढ़ता जायगा त्यों त्यों भक्त की इच्छा साँसारिक भोगों से हटती जायगी। भगवान् श्री कृष्ण बोले : –

मय्यर्पितात्मनः सम्यक् निरपेक्षस्य सर्वतः
मयात्मना सुखं यत् तत् कुतः स्याद्विषयात्मनाम् ॥
(भा, पु.)

उद्धव ? जब चारों ओर से एकाग्र होकर भक्त मुझ में ही चित्त लगाता है, तो मुझ में ही लीन होने से उसको जो सुख मिलता है, वह

विषयों से लीन होने वालों को नहीं मिलता ! और सुनो :—

वाध्यमानोऽपि मद् भक्तों विषयैरजितेन्द्रियः ॥
प्रायः प्रगल्भया भक्तया विषयैर्नाभिभूयते ॥
यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ।
तथा मद् विषया भक्ति रुद्धवेनांसि कृत्स्नशः ॥

(भा. पु.)

प्रिय उद्धव ? अजितेन्द्रिय (जिसकी इन्द्रियाँ—वश में न हो) होने से विषयों द्वारा पीड़ित भी मेरा भक्त प्रतिक्षण बढ़ती हुई भक्ति के प्रभाव से उन विषयों द्वारा नहीं दबाया जा सकता अर्थात् मेरे भक्त के ऊपर विषयों का कोई प्रभाव नहीं हो सकता, विषयों को भोगता हुआ भी वह निर्लेप रहता है। जिस प्रकार खूब प्रज्वलित अग्नि लकड़ी के ढेर के ढेर भस्म कर देती है इसी प्रकार–भक्ति भी भक्त के सारे पापों को नष्ट कर देती है। और :—

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः ।
मया सन्तुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ (भा.पु.)

भक्त भक्ति द्वारा जब जितेन्द्रिय शान्त हो कर प्राणि मात्र को भगवान् का ही रूप जान जाता हैं, एवं जब उसका मन मेरे (भगवान्) में ही सन्तुष्ट रहते लग जाता है, तब चाहे वह निर्धन भी हो तो भी सारा देश उसके लिये सुखमय हो जाता है। श्री पूज्य बापू महात्मा गान्धी जी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। वह भक्त निर्भय हो जाता हैं, जंगल हो चाहे पहाड़, नदी हो चाहे समुद्र, नगर हो या निर्जन वन, सब स्थानों में उसकी प्रेम भरी आँखों के सामने उसका प्यारा प्रीतम खेलता

हुआ नजर आता है। जब भक्त धीरे २ भगवत् प्रेम में इतना घुल मिल जाता है कि उसको संसार की कोई वस्तु अपनी ओर नहीं खींच सकती तो वह न केवल चक्रवर्ती राज्य को ही अपितु स्वर्ग लोक तथा अन्य देवलोकों यहां तक कि मोक्ष को भी लात मार देता है। वह सिवाए प्रभु दर्शन के कुछ भी नहीं चाहता। भगवान् श्री कृष्ण और बोले :—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्यम् ।
न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥
न योगसिद्धिमपुनर्भवं वा ।
मय्यर्पितात्मैच्छति मद् विनान्यत् ॥
(भा॰ पु॰)

प्रिय उद्धव ? जिस भक्त ने मन मुझ में अर्पण कर दिया है वह मेरे सिवाए और किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता। यहाँ तक कि वह पारमेष्ट्य (ब्रह्मा बनने) को इन्द्र लोक को, विश्व भर के राज्य को, पाताल आदि भूमियों के राज्य को, योग सिद्धि को, और मोक्ष को भी नहीं चाहता। किसी उर्दू कवि ने ठीक ही कहा हैं कि :-

जो मजा इन्तजारे यार में देखा ।
न वह मजा वस्ले यार में देखा ॥

भक्त से बढ़ कर भगवान् को कोई भी प्यारा नहीं रहता। इसी से भगवान् को भक्त वत्सल भी कहते हैं।

——

चार वर्गों में अर्थ की विशेषता

अर्जुन और युधिष्ठिर के इस सम्वाद में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चार वर्गों में से अर्थ धन) की विशेषता बतलाई गई है। जब पाण्डव, श्री भगवान् कृष्ण की सहायता से महाभारत को लड़ाई को जीत चुके तो धर्मराज युधिष्ठिर के हृदय में बड़ा शोक हुआ अतः युधिष्ठिर सारा राज्य छोड़ कर संन्यास लेने को तैयार हो गये। युधिष्ठिर बड़े महावीरों की हत्या एवं अथाह सेना का विनाश देख कर सोचने लगे कि इस नाश होने वाले राज्य की प्राप्ति के लिये हमने कितना पाप किया है अत। इसका प्रायश्चित्त सब कुछ त्याग करने से ही हो सकेगा। धर्मराज युधिष्ठिर की सन्यास लेने की प्रतिज्ञा का पत जब अर्जुन को लगा तो वे कहने लगे :—

> शत्रून्हत्वा महीं लब्ध्वा स्वधर्मेणोपपादिताम् ।
> एवंविधं कथं सर्वं त्यजेथा बुद्धिलाघवात् ॥
>
> (मा. भा.)

महाराज युधिष्ठिर ! महाभारत की लड़ाई तो धर्म की लड़ाई लड़ी गई है, इस में किसी प्रकार का अन्याय नहीं हुआ अतः न्याय से प्राप्त हुए राज्य को आप कैसे ठुकरा रहे हैं। इतनी जो कुछ सम्पत्ति हमको प्राप्त हुई है क्या इसको छोड़ कर धर्म, काम, मोक्ष, कभी सिद्ध हो सकते हैं, मैं मानता हूँ कि धर्म द्वारा ही मनुष्य के जीवन का कल्याण

होता है किन्तु धर्म भी तो धन द्वारा ही किया जा सकता है। अर्जुन फिर बोले :—

> अर्थेभ्यो हि विवृद्धेभ्यः संभृतेभ्यस्ततस्ततः ।
> क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः ॥
>
> अर्थाद्धर्मश्च कामश्च मोक्षश्चैव नराधिप ।
> प्राणयात्रापि लोकस्य विना ह्यर्थं न सिद्ध्यति ॥

(म. भा.)

महाराज युधिष्ठिर ? मनुष्य के पास यदि धन अधिक मात्रा में हो तो उसके सारे के सारे काम इस प्रकार होते जाते हैं जिस प्रकार बड़े २ पर्वतों से स्वयं नदियें बहती चली जाती हैं। धन द्वारा मनुष्य बड़े २ राजसूय अश्वमेधादि यज्ञ कर सकता है एवं दीन, दुखियों की सहायता कर सकता है। संसार के अनेकों सुखों का भोग करता हुआ मोक्ष प्राप्त कर सकता है। असली रूप में यदि देखा जाय तो धन के बिना मनुष्य के जीवन का निर्वाह ही नहीं हो सकता। सन्यासावस्था में भी तो उसे वस्त्र, भोजनादि वस्तुओं की आवश्यकता होती है, यह आवश्यकताएं धन द्वारा ही पूरी हो सकती हैं। अर्जुन फिर बोले :—

> अर्थेन हि विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः ।
> विच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥
> यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्था स्तस्य बान्धवाः ।
> यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥

(म. भा.)

संसार में जो निर्धन होता है उसके सारे के सारे काम उस प्रकार रुक जाते हैं जैसे ग्रीष्म ऋतु में छोटी २ नदियां सूख जाती हैं। संसार में देखा जाता है कि धनी पुरुष के ही मित्र बनते हैं, सम्बन्धी भी उसी का साथ देते हैं जिसके पास धन हो, धनी पुरुष को ही बड़ा समझा जाता है, जिसके पास धन हो उसी को पण्डित कहा जाता है। अर्थात् निर्धन मनुष्य का ससार में कोई मूल्य नहीं। अर्जुन फिर बोले :—

अधनेनार्थकामेन नार्थः शक्यो विधित्सितुम् ।
अर्थैरर्था निवध्यन्ते गजैरिव महागजाः ॥
(म. भा.)

निर्धन यदि धनी बनना चाहे तो धन द्वारा ही बन सकता है क्योंकि पैसे से पैसा कमाया जाता है, जिस प्रकार हाथी से हाथी पकड़ा जाता है। महाराज युधिष्ठिर ? आप बड़ी भूल कर रहे हैं जो इतने परिश्रम से एवं इतना धर्म महा युद्ध लड़कर प्राप्त की हुई इस राज्य लक्ष्मी को ठुकरा कर सन्यास ग्रहण करने का विचार प्रकट कर रहे हैं। राज्य लक्ष्मी का भोग करते हुए ही धर्म और मोक्ष प्राप्त किये जा सकते हैं।

नाधनस्यास्त्ययं लोको न परः पुरुषोत्तम ।
(म. भा.)

मनुष्य धन के बिना स्वार्थ और पुरुषार्थ इन दोनों में से एक भी सिद्ध नहीं कर सकता।

—:o:—

श्री राम का लक्ष्मण को उपदेश

श्री राम लक्ष्मण को वैराग्य, ज्ञान, और भक्ति का स्वरूप समझा रहे हैं। भगवान् श्री राम बोले :—

धर्म ते विरति जोग ते ज्ञाना, सदा मोच्छप्रद वेद बखाना।
जाते वेगि द्रवहु मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥

(रा. मः.)

प्रिय भाई लक्ष्मण ? धर्म के आचरण से वैराग्य होता है। वैराग्य किसे कहते हैं इसके सम्बन्ध में महर्षि पतञ्जलि जी ने अपने योग दर्शन में इस प्रकार लिखा है :—

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।

देखे और सुने जाने वाले इन्द्रियों के विषयों से मन को वश में कर लेने का नाम वैराग्य है। यह वैराग्य मनुष्य गृहस्थावस्था में भी प्राप्त कर सकता है। सब कुछ छोड़ कर जंगल में बैठ जाने का नाम वैराग्य नहीं है। सरल शब्दों में इन्द्रियों को वश में करने का नाम वैराग्य है। इसी प्रकार मोक्ष से ज्ञान उत्पन्न होता है तथा ज्ञान मोक्ष को देने वाला है। ऐसा वेदों ने वर्णन किया है। प्रिय लक्ष्मण ? जिससे मैं शीघ्र ही प्रसन्न होता हूँ, वह मेरी भक्ति है जो भक्तों को सुख देने वाली है। भगवान् श्री राम फिर बोले ;—

सो, सुतंग अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ग्यान विग्याना।
भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो सत होई अनुकूला॥
(रा. मा.)

प्रिय लक्ष्मण ? वह भक्ति स्वतन्त्र है, उनको ज्ञान विज्ञान आदि किसी दूसरे साधन की आवश्यकता नहीं है। ज्ञान और विज्ञान तो उसके अधीन हैं। भक्ति अनोखी और सुख की मूल है. और वह तब ही मिलती है जब गुरू और सत्पुरुषों की कृपा होती है। वास्तव में गुरु की कृपा के बिना मनुष्य का जन्म सफल नहीं हो सकता। शास्त्रों में गुरुओं का स्थान भगवान् से भी बड़ा बतलाया गया है। महात्मा श्री कबीर जी कहते हैं :–

गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोबिन्द दियो बताय॥

एक ओर भगवान् हैं दूसरी ओर गुरुदेव, किसको पहले प्रणाम किया जाये, यह संशय कबीर जी के मन में उत्पन्न हुआ, कुछ सोचने के बाद कहने लगे कि गुरु देव को पहले प्रणाम करना चाहिए, क्योंकि गुरु देव की कृपा से ही तो भगवान् के दर्शन हुए। शास्त्रों में तो यहाँ तक लिखा है कि :-

शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।

भगवान् रुष्ट हो जाँय तो गुरु रक्षा कर सकते हैं, किन्तु यदि गुरु रुष्ट हो जाँएं तो कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। इसलिये प्रिय लक्ष्मण ! मेरी भक्ति गुरु की सेवा और उनके उपदेश से ही प्राप्त हो सकती है। अब मैं तुमको भक्ति के सम्बन्ध में फिर बतलाता हूँ :–

संत चरन पंकज अति प्रेमा । मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मात बंधु पति देवा । सब मोहि कहं जानै दृढ़ सेवा ॥
(रा. मा.)

जिसको सन्तों के चरण कमलों से अत्यन्त प्रेम हो, मन, वचन और कर्म से भजन का दृढ़ नियम हो और जो मुझ को ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता सब कुछ जानें, और सेवा करने में दृढ़ हो । ऐसे भक्त के वश में मैं सदा रहा करता हूँ । श्री राम और बोले :-

मम गुन गावत पुलक सरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाके । तात निरंतर बस मैं ताके ॥
(रा. मा.)

प्रिय लक्ष्मण ! मेरा गुण गाते समय जिसका शरीर पुलकित (अत्यन्त प्रसन्न) हो जाय, वाणी गदगद हो जाय और नेत्रों (प्रेमाश्रुओं का) जल बहने लगे और काम, मद और दम्भ आदि जिसमें न हो, प्रिय भाई ? मैं सदा उसके वश में रहा करता हूँ । और सुनो :-

वचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निः काम ।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउं सदा विश्राम ॥
(रा. मा.)

जो मन, वचन, एवं कर्म से निष्काम भाव से मेरा भजन करते हैं, उनके हृदय कमल में मैं सदा विश्राम किया करता हूँ श्री लक्ष्मण श्री भगवान् राम के यह वचन सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा श्री भगवान् राम के चरणों में प्रणाम किया । श्री लक्ष्मण अपना आज बड़ा अहोभाग्य समझ रहे हैं, और मन में सोचने लगे कि जिस प्रभु की कृपा पाने के लिये मनुष्य को अनेक कठोर तपस्याएं करनी पड़ती हैं वह सच्चिदानन्द प्रभु भ्राता के रूपमें मेरे साथ हैं, मैं उनकी सेवा कर रहा हूँ ।

राजा परीक्षित द्वारा कलियुग का निग्रह

राजा परीक्षित बड़ी बुद्धिमत्ता और चतुरता से राज्य का शासन करने लगे एवं उन्होंने सारे विश्व को अपने अधिकार में कर लिया। परीक्षित के पराक्रम के सम्बन्ध में महर्षि श्री व्यासदेव जी लिखते हैं :-

भद्राश्वं केतुमालं च भारत चोत्तरान् कुरून् ।
किम्पुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥

(भा. पु.)

राजा परीक्षित ने भद्राश्व वर्ष, केतुमाल वर्ष, कुरुवर्ष, एवं, भारतवर्ष, इन चारों वर्षों को अपने अधिकार में कर लिया, इसके अतिरिक्त, और जो छोटे २ किंपुरुष आदि वर्ष थे वहाँ भी राजा परीक्षित का ही बोलबाला था। इस प्रकार राजा परीक्षित चक्रवर्ती सम्राट् बन गये। एक दिन राजा परीक्षित के राज्य में एक विचित्र घटना उपस्थित हुई। कलियुग के दुराचारों से पीड़ित होकर बैल का रूप धारण कर धर्म एवं गाय का रूप धारण कर पृथ्वी माता यह दोनों आपस में वार्तालाप कर रहे थे। उतने में सहसा राजा परीक्षित आ पहुंचे, उन्होंने पृथ्वी माता और धर्म को दुःखी देख कर उनसे पूछा :-

आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् ।
आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ॥

(भा. पु.)

धर्म ? क्या कारण है तुम इतने दुःखी और क्षीण क्यों हो गये हो। मेरा राज्य होते हुए तुम्हारी इस दीन अवस्था का होना मैं अपना भारी अपमान समझता हूँ। अपनी इस निर्बलता का कारण बतलाइये। राजा परीक्षित के बचन सुन कर धर्म बोला :

एतद्वः पाण्डवेयानां युक्तमार्तभय वचः ।
येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान् कृतः ॥
अप्रयुक्तिनिर्देशादिति केष्वपि निश्चय ।
अत्रानुरूप राजर्षे विमृशस्त्र मनीषया ॥
(भा. पु.)

राजर्षि परीक्षित ! मैं आपके वचनों को सुन कर वड़ा प्रसन्न हुआ हूँ, यह तो पांण्डव कुल के राजाओं की विशेषता है जो दीनों की रक्षा सदा से करते रहे हैं। इस प्रकार के गुणों के प्रभाव से प्रभावित होकर ही तो भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन के दूत बने थे। महाराज परीक्षित ? मेरे दुःख का कारण जानते हुए भी आप मुझे व्यर्थ ही लज्जित क्यों कर रहे हैं। आप तो सब कुछ स्वयं ही जानते हैं। धर्म के यह वचन सुन कर राजा परीक्षित समझ गये कि धर्म के दुःख का कारण कलियुग ही है, उन्होंने तुरन्त कलियुग को बुलाया और उसे कहा :-

न र्वितव्यं भवता कथञ्चन क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ।
(भा. पु)

दुष्ट कलियुग ? तुम मेरे राज्य में नहीं रह सकते हो क्यों कि तुम पापों के राजा हो। यह सुनते ही कलियुग कांप उठा और बड़े दीन वचनों से बोला, महाराज ? आपका राज्य तो सारे भूमण्डल में है मैं तो फिर जीवित ही नहीं रह सकता। कृपालु, ऐसा मत कीजिए, मेरे रहने के

लिये कोई स्थान निश्चित कर दें, मैं उन स्थानों के अतिरिक्त और कहीं भी अपना प्रभाव न डालूंगा। यह सुन कर राजा परीक्षित ने यह निश्चय किया :-

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ।
द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥

(भा. पु,)

राजा परीक्षित ने कलियुग की प्रार्थना पर उसे चार स्थान दिये। जुआखोरी, शराब, बदमाश स्त्रियें, एवं हिंसा। अर्थात् कलियुग, इन चार स्थानों में तेरा प्रभाव रहेगा। कलियुग की प्रार्थना पर उसे सोना भी दिया, आशय यह हुआ कि इन पाँच बुराइयों के सम्बन्ध में ही संसार में झगड़े होते हैं, इसी का नाम कलियुग है। राजा परीक्षित ने और यह भी कहा कि :-

न ते गुडाकेश पयोधराणां वद्धाञ्जले वै भयमस्ति किञ्चित् ।

(भा० पु.)

कलियुग ! जो प्रभु के भक्त होंगे उन पर भी तेरा कोई प्रभाव न हो सकेगा। राजा परीक्षित का इतना विलक्षण पराक्रम है यदि परीक्षित कलियुग को बन्धन में न रखते तो संसार में न जाने क्या हो जाता।

राज धर्म

महाभारत के इस उपाख्यान में यह बतलाया गया हैं कि राजा अपराधी को दण्ड देने से पुण्य प्राप्त करता है पाप नहीं। जब महाराज युधिष्ठिर महाभारत की लड़ाई में मरे हुए योद्धाओं को देख कर बड़े दुःखी हुए, एवं इस लड़ाई को महापाप समझ कर सन्यास लेने को तैयार हो गये तो उस समय अर्जुन महाराज युधिष्ठिर को बहुत समझाते हैं किन्तु वे नहीं मानते, उतने में यहाँ मुनि व्यास देव जी आये। कहने लगे :—

स्व धर्मं चर धर्मज्ञ यथाशास्त्रं यथा विधि।
नहि गार्हस्थ्यमुत्सृज्य तवारण्यं विधीयते॥
गृहस्थं हि सदा देवाः पितरोऽतिथयस्तथा।
भृत्याश्चैवोपजीवन्ति तान्भरस्व महीपते॥
वयांसि पशवश्चैव भूतानि च जनाधिप।
गृहस्थैरेव धार्यंते तस्मात् श्रेष्ठो गृहाश्रमी॥

(म. भा.)

धर्मराज युधिष्ठिर, मैं तो आपसे यही निवेदन करूंगा कि आप शास्त्रानुसार गृहस्थाश्रम का ही पालन करें। गृहस्थाश्रम को छोड़ कर सन्यास लेना मैं उचित नहीं समझता। गृहस्थआश्रम में कुछ अपनी विशेषताएं हैं जो सन्यास में नहीं हैं, अर्थात् गृहस्थआश्रम में रहता हुआ मनुष्य देवता, पितर, अतिथि, पशु, पक्षी, आदि सबको सन्तुष्ट कर

सकता है। महाराज सारे जितने भी संसार में प्राणी हैं वे सब गृहस्थियों के सहारे ही जीते हैं, इसीलिये शास्त्र में गृहस्थाश्रम को सर्व श्रेष्ठ माना है। महाराज, आपके हृदय में कौरवों के साथ लड़ाई लड़ने से जो पाप का भय उत्पन्न हुआ है यह व्यर्थ है आपने तो राज धर्म का पालन किया है, दुष्टों को दण्ड देना राजा का कर्तव्य है उसे कोई पाप नहीं लगता। राजा सुद्युम्न दुष्ट को दण्ड देकर मुक्त हो गये थे। युधिष्ठिर ने व्यासदेव जी के यह वचन सुने और वे प्रसन्न होकर व्यास जी से पूछने लगे :—

भगवन्कर्मणा केन सुद्युम्नो वसुधाधिपः।
संसिद्धि परमां प्राप्तः श्रोतुमिच्छामि त नृपम्॥

(म. भा.)

महामुने, आपने जो राजा सुद्युम्न का नाम लिया है तथा यह कहा है कि राजा सुद्युम्न कर्म करने से मुक्त हो गये, कृपया इस सम्बन्ध का सारा इतिहास सुनाइए, मैं सुनना चाहता हूँ। श्री व्यास जी धर्मराज युधिष्ठिर की यह प्रार्थना सुन कर बोले :—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
शखश्च लिखितश्चास्तां भ्रातरौ संशित व्रतौ॥

(म. भा.)

महाराज युधिष्ठिर! राजा सुद्युम्न के सम्बन्ध में एक प्राचीन इतिहास है, वह सुनिए। शंख और लिखित नाम वाले दो भाई थे। वे दोनों बाहुदा नदी के किनारे रहते थे। उनके बड़े सुन्दर भवन थे चारों ओर फूल और फल के वृक्ष थे। उन दोनों के घर का कोई ६ मील का अन्तर था। एक दिन लिखित अपने भाई शंख के आश्रम में आये। दैवयोग से इस दिन शंख कहीं बाहर गये हुए थे, अर्थात् आश्रम में कोई

न था, लिखित ने वहा पहुंचते ही विना आज्ञा पके हुए कुछ फल वृक्ष से तोड़ कर खाये, खाते २ ही उनके भाई शंख भी आ पहुंचे। लिखित को फल खाते देख शंख ने पूछा—यह फल कहां से लाये हो ? हसते हुए लिखित कहने लगे कि भाई जी ? आपके आश्रम में ही तोड़े हैं। यह सुन कर भ्राता शंख कुपित हुए तथा लिखित से कहने लगे :—

गच्छ राजानमासाद्य स्व कर्म कथयस्व वै।
अदत्तादास मेवं हि कृतं पार्थिवसत्तम ॥

(म: भा.)

भाई लिखित ! जाओ राजा सुद्यम्न के पास अपना अपराध प्रकट करो कि मैंने बिना आज्ञा से फल तोड़े हैं मुझे दण्ड दीजिए। भाई की आज्ञा पाकर लिखित राजा सुद्युम्न के पास गये तथा अपना अपराध प्रकट किया राजा ने सुनते ही लिखित की दोनों भुजाए काटने का दण्ड दिया यह दण्ड पाकर लिखित शख के पास पहुंचे अपनी कटी हुई भुजाएं दिखाई। शख वड़े प्रसन्न हुए और राजा के न्याय की प्रशसा की भाई लिखित को कहा कि तुम बाहुदा नदी में जाकर तर्पण करो तुम्हारी भुजा ठीक हो जायगी लिखित ने वैसा ही किया उनकी भुजा ठीक हो गई। महाराज युधिष्ठिर ? चोर को दण्ड देने के कारण राजा सुद्युम्न मुक्त हो गये। इ लिये मैं आपसे यही कहूंगा कि :—

भ्रातुरस्य हितं वाक्यं शृणु धर्मज्ञसत्तम।
दण्ड एवं हि राजेन्द्र क्षत्रधर्मो न मुण्डनम् ॥

(म. भा.)

महाराज ! अर्जुन जो कुछ कह रहे हैं ठीक कह रहे हैं। राजाओं का धर्म दुष्टों को दण्ड देना है सन्यास लेना नहीं। शंख और लिखित दोनों भ्राता बड़े विद्वान् हुए। इनकी लिखी हुई शखस्मृति और लिखित स्मृति आज भी उपलब्ध हैं। — —

श्री राम का शबरी को भक्ति उपदेश

रामायण के इस उपाख्यान में श्री भगवान् राम ने शबरी की भक्ति से प्रसन्न हो कर उसे नवधा भक्ति का उपदेश किया है। एक दिन भगवान् श्री राम और लक्ष्मण भ्रमण करते २ शबरी के आश्रम में पहुंचे। शबरी के आनन्द की कोई सीमा न रही श्री तुलसीदास जी शबरी की प्रसन्नता का वर्णन करते हुए लिखते हैं :—

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला।
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई।
(रा. मा.

कमल के समान नेत्र और विशाल भुजा वाले, सिर पर जटाओं का मुकुट और हृदय पर बनमाला धारण किये हुए सुन्दर सांवले और गोरे दोनों भाईयों के चरणों में शबरी लिपट पड़ी। तुलसी जी और लिखते हैं :—

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा।
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुन्दर आसन बैठारे।
(रा. मा.

शबरी प्रेम में मगन हो गयी, इतना प्रेम उमड़ आया कि मुख से वचन नहीं निकलता। बार बार चरण कमलों में सिर नवा रही है

फिर शबरी ने जल लेकर आदर पूर्वक दोनों भाइयों के चरण धोये और फिर उन्हें सादर आसनों पर बैठाया। भगवान् श्री राम का विलक्षण सत्कार किया जा रहा है।

कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बार बार बखानि॥
(रा. मा.)

ने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द मूल और फल लाकर श्री राम को दिये। प्रभु ने बार बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेम सहित खाया। बेचारी शबरी श्री भगवान् राम के आगे हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयी और कहने लगी, प्रभो मैं बड़ी मूढ़बुद्धि हूँ, आपकी सेवा पूरी तरह से नहीं कर सकती हूँ, यदि कोई कमी रह गई हो तो प्रभो, क्षमा कीजिए। बड़े नम्र भाव से फिर कहने लगी :—

अधम ते अधम अति नारी। तिन्ह मह मैं मतिमंद अघारी॥
कहू रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानऊ एक भगतिकर नाता॥
(रा. मा.)

प्रभो ? ससार में जो अधम से भी अधम हैं, स्त्रियां और उन स्त्रियों में भी मैं सबसे ही अत्यन्त अधम हूँ, मन्द बुद्धि हूँ। भगवान् श्री राम शबरी के प्रेम और दीनता से भरे वचन सुन कर कहने लगे—शबरी! जरा मेरी बात सुन। मैं तो ससार की सारी बातें पीछे रख कर केवल एक भक्ति को ही मुख्य मानता हूँ। सुनो :—

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भक्ति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल वारिद देखिअ जैसा॥
(रा. मा.)

शबरी, जाति पाति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य ऐसा लगता है, जैसे जल से बिना बादल दिखायी पड़ता है। अर्थात् जिस प्रकार पानी बरसने के बगैर बादलों की कोई शोभा नहीं होती इसी प्रकार भक्ति के बिना मनुष्य की भी कोई शोभा नहीं जरा सुनो मैं तुमको भक्ति के सम्बन्ध में कुछ बतलाता हूँ। श्री राम बोले :–

नवधा भगति, कहऊ तोहि पाहीं सावधान, सुनु, धरु मनमाही।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरी भगति मम कथा प्रसंगा।
(रा. मा.)

शबरी! तुझ से अब नो प्रकार की भक्ति कहता हूँ तू सावधान होकर सुन और मन में धारण कर। पहली भक्ति है सन्त पुरुषों का संग दूसरी भक्ति हैं मेरे कथा प्रसंग में प्रेम। श्री राम फिर बोले :—

गुर पद पंकज सेवा. तीसरी भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥

तीसरी भक्ति है अभिमान रहित होकर गुरु के चरण कमलों की सेवा। और चौथी भक्ति यह है कपट छोड़ कर मेरे गुण समूहों का गान करे। श्री राम फिर बोले :—

मन्त्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।
छठ दम सील विरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा।
(रा. मा.)

मेरे मन्त्र का जाप और मुझ में दृढ़ विश्वास-यह पांचवीं भक्ति है, जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियों को वश में करना

अच्छा स्वभाव या चरित्र, बहुत कार्यों से वैराग्य और निरन्तर सन्त पुरुषों के आचरण में लगे रहना। और सुनो :—

सातव सब मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा ॥
आठवें जथालाभ संतोषा। सपनेहुं नहिं देखइ पर दोषा ॥
(रा. मा.)

सातवीं भक्ति है संसार भर को समभाव से राममय देखना और सन्त पुरुषों को मुझ से भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो मिल जाय उसी में सन्तोष करना, और स्वप्न में भी पराए दोषों को न देखना। श्री राम फिर बोले :—

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिये हरष न दीना ।
नव महं एकउ जिन्ह के कोई। नारि पुरुष सचराचर कोई ॥
(रा. मा,)

नवीं भक्ति है सरलता और सब के साथ कपट रहित बर्ताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना, और किसी भी अवस्था में हर्ष और विषाद का न होना। इन नौ प्रकार की भक्ति में से जिन में एक भी होती है, वह स्त्री, व पुरुष जड़ या चेतन कोई भी हो मुझे वही अत्यन्त प्रिय हैं। शबरी ? तुझ में तो नौ प्रकार की भक्ति दृढ़ है। अतः मैं तुम पर प्रसन्न हो कर तुमको वह गति देता हूँ, जिसे बड़े २ महायोगी भी कठिनाई से प्राप्त कर सकते हैं। शबरी का जन्म आज सफल हो गया।

राजा परीक्षित को शाप

श्री मद्भागवत से इस उपाख्य न में मुनि बालक द्वारा दिये गये शा
का वर्णन है।

एकदा धनुरुद्यम्य विचरन्मृगया वने ।
मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ।।
जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् ।
ददर्श मुनिमासीनं शान्तं मीलितलोचनम् ।।

(भा. पु.

एक दिन अनेक शस्त्रों से सुसज्जित होकर राजा परीक्षित शिका
खेलने के लिये वन की ओर निकले। जगल में मृग का पीछा करते २ थ
गये, तथा भूख और प्यास से पीड़ित होकर तालाव की खोज करते हु
एक महर्षि के आश्रम में पहुंच गये। यह आश्रम महर्षि शमीक का था
उस समय महामुनि शान्त होकर आंखे बन्द किये हुए परमानन्द प्रभु
चिन्तन में सलग्न थे आश्रम में कोई अन्य व्यक्ति भी न था। अत
राजा परीक्षित अपना उचित सत्कार न पा कर क्रोध से धधक उठे तथ
अज्ञान वश पास में ही भूमि से मरे हुए एक सांप के शरीर को धनुष
किनारे से उठा कर ध्यान मग्न महर्षि शमीक के गले में डाल दिया
कुछ समय पश्चात महर्षि का तेजस्वी ब्रह्मचारी बालक आश्रम में
पहुंचा, एवं अपने पिता जी के गले में मरे हुए सांप का कलेवर लट

हुआ देख कर क्रोध में आकर बोला, अहो अनर्थ, जिन राजाओं को हमने रक्षक के रूप में नियुक्त किया है वे ही आज भक्षक का काम कर रहे हैं। राजाओं का तो यह कर्तव्य है कि वे हमारी तपस्या में किसी प्रकार का विघ्न न होने दिया करें, किन्तु आज वे विपरीत आचरण कर रहे हैं यह कह कर मुनि बालक ने हाथ मे जल लेकर राजा परीक्षित को शाप दे डाला :

इति लघितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि ।
दंक्ष्यति स्म कुलाङ्गार चोदितो मे ततद्रुहम् ॥

(भा. पु)

राजा परीक्षित ? आपने शास्त्र मर्यादा के विरुद्ध आचरण किया है इसलिये आज से सातवें दिन तक्षक (महा सर्प) तुम्हें काट डालेगा एव तुम्हारी मृत्यु होगी। यह कह कर मुनि बालक जोर से रोने लगा। बालक का रोना सुनकर महामुनि शमीक का ध्यान भग हो गया और बालक की ओर देखा तथा उसे रोने के सम्बन्ध में पूछा। बालक ने सारी घटना का वर्णन किया। महर्षि सारा वर्णन सुन कर चकित हुए तथा बालक के ऊपर क्रुद्ध हो कर बोले —

अहो बताहो महदज्ञ ते कृतमल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ।

(भा. पु.)

मूर्ख बालक, तुमने अनर्थ कर डाला जो इतने थोड़े से अपराध के लिये इतना बड़ा दण्ड दिया वास्तव में महा पुरुषों का भूषण तो क्षमा ही होता है राजा परीक्षित ने अज्ञान बुद्धि से ऐसा कर दिया था तो बड़ी बात न थी दण्ड देने की अपेक्षा उन्हें शिक्षा देने की आवश्यकता थी। अब तो कुछ नहीं बन सकता महर्षियों के वाक्य वीरों के वाण की तरह एक वार कहे गये फिर पीछे नहीं लौटा करते। अच्छा प्रभु ही रक्षक है ऐसा कह कर मुनि बोले :—

अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्वबुद्धिना ।
पाप कृतं तद्भगवान् सर्वात्मा क्षन्तुमर्हति ॥ (भा. पु)

अज्ञानी बालक ने साधारण अपराधी अपने नौकर रूप राजा क
भारी दण्ड दे दिया है अब श्री भगवान् उनका कल्याण करें। या
सुनते ही राजा का अभिमान नष्ट हो गया केवल सात दिन ही मरने
वाको जान कर तुरन्त अपनी राजधानी लौटे तथा बड़ी भयकर प्रति
करते हुए कहते हैं:—

अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशम् ।
प्रकोपितं ब्रह्म कुलानलो मे ॥
दहत्वभद्रस्य पुनर्न मे ऽस्तु ।
पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥

(भा. पु.

मैंने आज महर्षि का अपमान कर ब्रह्माग्नि को प्रदीप्त किया
इसलिये इस ब्रह्म कोपाग्नि से मेरा राज्य, सेना विशाल कोश यह स
आज ही भस्म हो जाय। इस से आगे कभी मेरी बुद्धि ब्राह्मण, देवत
एवं गौ के विरुद्ध आचरण न करे। ऐसा कह कर राजा परीक्षित
अपना सब राज पाट अपने पुत्र जनमेजय को सौंप दिया तथा स्व
पवित्र गङ्गा के तट पर जा पहुंचे वहां दैव योग से सहसा ही महामु
शुकदेव जी पधारे।

तत्राभवद् भगवान् व्यासपुत्रः ।
यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ॥
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभ तुष्टः ।
वृतश्च बालैरवधूतवेषः ॥

(भा. पु.)

महामुनि शुकदेव स्वइच्छा से ही घूमते २ अपनी शिष्य मण्डल
सहित राजा परीक्षित के पास पहुंच गये।

— — —

लोभ का प्रभाव

एक बार महाराज युधिष्ठिर कुछ असमंजस में पड़ गए, कि पाप क्या वस्तु है ? और वह किस प्रकार मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होता है ? एवं इस बात को जानने के लिए उन्होंने भीष्म पितामह से प्रश्न किया :—

"पापस्य यदधिष्ठान, यतः पापः प्रवर्तते
एतदिच्छाम्यहं श्रोतु तत्वेन भरतर्षभ ॥
(म. भा.)

भीष्म पितामह ? इस पाप का मूल कारण क्या है ? जिससे यह मनुष्यों के हृदय में पैदा होता हैं, यह मैं भली प्रकार सुनना चाहता हूँ । इस बात को सुन कर भीष्म पितामह कहने लगे :—

"पापस्य यदधिष्ठानं, तच्छृणुष्व नराधिप ।
एको लोभो महा ग्राहो लोभात्पापं प्रवर्तते ॥
(म. भा.)

राजन् ? पाप के मूल कारण के सम्बन्ध में मैं तुम्हें बतलाता हूं ध्यान पूर्वक सुनो :—

यह लोभ एक महान् मगरमच्छ के समान भयंकर है, इसी लोभ से पाप की उत्पत्ति होती है । तथा जिस प्रकार मगर-मच्छ समुद्र के छोटे २ जन्तुओं को खा जाता है इसी प्रकार यह लोभ भी मनुष्य के जीवन को

पाप-कर्मों द्वारा समाप्त कर देता है। ससार में जितने भी पाप, बुरे काम, तथा अधर्म होते हैं, और इन महा अनर्थकारी बातों से मनुष्यों को जो कुछ कष्ट, दुःख एवं पीड़ाएं भोगनी पड़ती हैं—उन सब का कारण यही लोभ है। अतः इसका सदा के लिए त्याग कर देना चाहिए।

"लोभात्क्रोधः प्रभवति, लोभात्कामः प्रजायते ।
लोभात्मोहश्च माया च लोभः पापस्य कारणम् ।।

(म. भा.

इस लोभ से क्रोध (गुस्सा) उत्पन्न होता है। काम का प्रादुर्भाव भी इसी से होता है। माया और मोह भी इसके ही द्वारा पैदा होते हैं। अतः इन सब विचारों की जड़ केवल लोभ ही है।

इतना ही नहीं :—

अक्षमा ह्री परित्यागः श्रीनाशो धर्मसंक्षयः ।
अविद्या, प्रख्यनाश्चत्र सर्वं लोभात्प्रवर्तते ।।

(म. भा.)

लोभी पुरुष में क्षमा का भाव नहीं रहता दीन हीन और दुःखी पर वह लोभ के कारण कभी भी दया नहीं कर सकता, क्योंकि इसे भय रहता है कि कहीं इस दीन की सहायता के लिए मेरा कुछ व्यय अर्थात खर्च) न हो जाय।

दूसरे वह लज्जा को बिल्कुल छोड़े देता है। और चोरी करना जूआ खेलना आदि सारे कुकर्म लोभ के वश में हो कर करना प्रारम्भ कर है। उसे इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि मुझे लोग क्या कहेंगे ? कि यह जूआ खेलता है, चोरी करता है, उसके सामने एक ही उद्देश्य

रहता है कि मैं किसी प्रकार धन एकत्रित कर लूं लोग चाहे कुछ भी क्यों न कहें। इस प्रकार शनैः २ उ । यश भी समाप्त हो जाता है, उसके धर्म का भी विनाश हो । है, तथा उस धन से तो लाभ ही कुछ नहीं जो देश के नव-निर्माग र उत्थान के काम न आ सके।

त्याग की भावना से वह सदा बहुत दूर रहता है। लोभी अपनी विद्या, कुल, सम्पत्ति और रूप आदि के अभिमान से पीड़ित और दुःखी हो जाता है। सब प्राणियों से उसे द्वेष, घृणा आदि हो जाती । वह किसी पर विश्वास नहीं कर सकता। इस प्रकार सब लोगों के साथ कठोरता का व्यवहार करता है। लोभी पुरुष की इच्छाए बहुत अधिक प्रबल हो जाती है। उसकी आंखे सुन्दर २ दृश्यों को देखने के लिए तड़पती रहती हैं। कान मीठे २ गानों को सुनना चाहते हैं। नाधिका (नाक) प्यारी २ सुगन्ध को सूंघना चाहती है। जिह्वा स्वादिष्ट और मधुर पदार्थों का रस लेने को आकुल रहती है इन सब बातों को पूरा करने के लिये लोभी दूसरों के धन का अपहरण करता है, अपनी माता और बहिनों को बुरी दृष्टि से देखने में उसे कोई भी संकोच नहीं होता। दूसरों की निन्दा करना, मिथ्या (झूठ) बोलना सब लोगों को कष्ट पहुंचाना यह उसके स्वाभाविक कार्य बन जाते हैं।

इतना सब कुछ करने पर भी लोभी पुरुष अपने लोभ को इसी प्रकार पूर्ण नहीं कर सकता जिस प्रकार अनेकों नदियाँ भी महासिंधु (समुद्र) को भर नहीं सकतीं।

अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने के कारण जो वेदना उसके मन में होती है उसका अनुमान वही लगा सकता है। उसका जीवन इस प्रकार

व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। अतः यह लोभ सर्वथा त्याज्य हैं। युधिष्ठिर तुम्हें यह पीड़ित न कर सके इसके लिये तुम सन्त महात्माओं का सत्संग निरन्तर करते रहो।

'धर्मप्रियान् स्तान्सुमहानुभावान्, ।
दान्तोऽप्रमत्तश्च समर्चयेथाः ॥
दैवात्सर्वे गुणवन्तो भवन्ति ।
शुभाशुभे वाक्प्रलापारतथान्ये ॥"

(म. भा.)

युधिष्ठिर? उन धर्म-प्रिय महानुभावों के सम्पर्क में निरन्तर रहो और उनके आचरणों का अनुकरण करो। क्योंकि उन महा पुरुषों का प्रत्येक वचन जीवन—निर्माण के रहस्य से परिपूर्ण होता है। इस प्रकार उस महा-ग्राह लोभ से सदा अपनी रक्षा करते रहो।

—:o:—

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपाराति दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद् युयोतनोरुणः शर्मयच्छता स्वस्तये ॥

हे दिव्यशक्तियो, रोग को दूर करो। सब प्रकार की अश्रद्धा को दूर करो। पाप-प्रिय (लोगों) की कंजूसी और बुरी कमाई को दूर करो। शत्रु-भाव को हमसे दूर करो। उदार शान्त-भाव को हमें प्रदान करो। जीवन सफल हो।

(ऋ. १०, ६३, १२)

————

राम नाम महिमा

इस प्रसङ्ग में राम नाम की महिमा के साथ २ यह बतलाया गया है कि भगवान् को भक्त अधिक प्यारा है या ज्ञानी। एक दित महामुनि नारद भगवान् श्री राम के आश्रम में पहुंचे तथा श्री भगवान् के चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। श्री भगवान् ने नारद जी को उठाकर बहुत देर तक हृदय से लगाये रक्खा, फिर कुशल पूछ कर पास बैठा लिया लक्ष्मण जी ने आदर के साथ नारद जी के चरण धोये। सत्कार पाकर नारद जी बोले :—

नाना विधि बिनती करि प्रभु प्रसन्न जियं जानि
नारद बोले वचन तब जोरि सरोरुह पानि ॥
(रा. मा.)

बहुत प्रकार से बिनती करके और प्रभु को मन में प्रसन्न जान कर तब नारद जी कमल के समान हाथों को जोड़ कर बचन बोले :—

सुनहु उदार सहज रघुनायक ।
सुंदर अगम सुगम बर दायक ॥

देहु एक वर मागउं स्वामी ।
जद्यपि जानत अंतरजामी ॥
(रा. मा.)

स्वभाव से ही उदार प्रभो ? सुनिये । आप सुन्दर अगम और सुगम वर के देने वाले हैं। हे स्वामी ? मैं एक बर मांगता हूं, वह मुझे दीजिये, यद्यपि आप अन्तर्यामी होने के नाते सब जानते हीं हैं श्री नारद जी की प्रार्थना सुन कर भगवान् श्री राम बोले, महामुनि नारद ? तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो ? क्या मैं अपने भक्तों से कभी कुछ छिपाव करता हूं ? मुझे ऐसी कौन सी वस्तु प्रिय लगती है जिसे नारद, तुम नहीं माँग सकते ? तुम जानते ही हो :—

जन कहुँ कछु अदेय नहि मोरे ।
अस विस्वास तजहु जनि मोरे ॥

(रा मा)

नारद ? मुझे भक्त लिये कुछ भी अदेय नहीं है अर्थात् भक्त के लिये में सब कुछ दे सकता हूँ। ऐसा विश्वास भूल कर भी मत छोड़ो। यह सुन कर नारद जी बड़े प्रसन्न हुए तथा श्री भगवान् से वर माँगने लगे :—

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक तें एका ॥
राम सकल नामन्ह से अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥

(रा. मा)

प्रभो ? यद्यपि प्रभु के अनेकों नाम हैं और वेद कहते हैं कि वे सब एक से एक बढ़ कर हैं, तो भी नाथ ? राम नाम सब नामों से बढ़ कर हो और पाप रूपी पक्षियों के समूह के लिये यह शिकारी के समान हो, अर्थात् राम नाम के लेने से सारे पाप इस प्रकार नष्ट हो जाया करें जिस प्रकार एक शिकारी बहुत सारे पक्षियों को मार डालता है। यह

वरदान नारद जी ने श्री राम से माँगा। यह सुन कर भगवान् श्री राम बोले :—

एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ ।
तब नारद मन हरष अति प्रभुपद नायउ नाथ ॥
(रा. मा.)

भगवान् श्री राम ने नारद से एवमस्तु (ऐसा ही हो) कह दिया यह सुन कर नारद अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा प्रभु के चरणों में मस्तक नवाया। भगवान् श्री राम फिर बोले :-

सुनु मुनि तोहि कहउं सहरोसा ।
भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥ (रा. मा.)

महामुने ? सुनो, मैं तुम्हें हर्ष के साथ कहता हूं कि जो सारी आशा-भरोसा छोड़ कर केवल मुझको ही भजते हैं, वह मुझे कितने प्यारे हैं, जरा सुनो :—

करउं सदा तिन्ह कै रखवारी जिमि बालक राखइ महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तहं राखइ जननी अरगाई ॥
(रा. मा.)

मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूँ जैसे माता बालक की रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब दौड़ कर आग और साँप को पकड़ने जाता है, तो वहाँ माता उसे अपने हाथों अलग करके बचा लेती है। और सुनो :—

प्रौढ़ भएं तेहि सुय पर माता । प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता ।
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी । बालक सुत सम दास अमानी ।
(रा. मा.)

नारद ? सयाना हो जाने पर उस पुत्र पर माता प्रेम तो करती है, परन्तु पिछली बात नही रहती (अर्थात् मातृ परायण शिशु की तरह फिर उसको बचाने की चिन्ता नहीं करती क्योंकि वह माता पर निर्भर न कर अपनी रक्षा आप करने लगता है) ज्ञानी मेरे प्रौढ़ (सयाने) पुत्र के समान है और (तुम्हारे जैसा) अपने बल का मान न करने वाला सेवक मेरे शिशु पुत्र के समान है। और सुनो :--

जन हि मोर बल निज बल ताही।
दुहु कह काम क्रोध रिपु आदि ॥
यह विचारि पंडित मोहि भजहीं।
पाए हुं ग्यान भगति नाहि तजहीं ॥

(रा. मा.)

नारद ? मेरे सेवक को केवल मेरा ही बल रहता है और उसे (ज्ञानी को) अपना बल होता है। पर काम क्रोध रूप शत्रु तो दोनों के लिये हैं (भक्त के शत्रुओं को मारने की जिम्मेवारी मुझ पर रहती है, क्योंकि वह मेरे परायण हो कर मेरी ही बल मानता है, परन्तु अपने बल को मानने वाले ज्ञानी के शत्रुओं का नाश करने की जिम्मेंवारी मुझ पर नहीं है) ऐसा विचार कर बुद्धिमान् लोग मुझ को ही भजते हैं। वे ज्ञान प्राप्त होने पर भी भक्ति को नहीं छोड़ने। इसलिये नारद ? मुझे जितना प्यारा भक्तत है उतना ज्ञानी नहीं।

भगवान् कपिल

जब संसार में साँख्य-विद्या का लोप हो रहा था तो उस समय श्री भगवान साँख्य-विद्या के प्रचार और प्रसार के लिये कपिल के रूप में अवतरित हुए थे। एक बार महर्षि—कर्दम बिन्दु सरोवर के किनारे तपस्या करने लगे। महर्षि कर्दम के हृदय में यह संकल्प था कि श्री भगवान् मेरे घर में जन्म लें। बहुत समय तपस्या करते बीत गया एक दिन महाराज मनु और उनकी रानी शतरूपा दोनों रथ में बैठ कर कर्दम जी के आश्रम में पहुँचे। महर्षि ने महाराज मनु का बड़ा आदर सत्कार किया तथा आश्रम में पधारने का कारण पूछा। यह पूछने पर महाराज मनु बोले :—

प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेयं दुहिता मम ।
अन्विच्छति पति युक्त वयः शीलगुणादिभिः ।।
यदा तु भवतः शीलश्रुतरूपवयो गुणान् ।
अश्रृणोन्नारदादेषा त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ।।

(भा. पु.)

महामुने ! प्रियव्रत और उत्तानपाद की बहन तथा मेरी कन्या, यह देवहूति, बड़े विद्वान् गुणी एवं सुन्दर वर की खोज में हैं। महर्षि नारद के मुख से इसने आपकी बहुत महिमा श्रवण की है, तथा उसी दिन से इसने यह निश्चय कर लिया है कि मैं महर्षि कर्दम से ही विवाह करूंगी। लोगों के मुख से कुछ ऐसा भी सुनने में आया है कि आपभी विवाह

करना चाहते हैं इसलिये आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ । यह सुन कर महर्षि कर्दम बोले :—

वाढ़मदवोढुकामोऽहमप्रत्ता तवात्मजा ।
आवयोरनुरूपो ऽ सावाद्यो वैवाहिको विधिः ॥

(भा. पु.)

महाराज, आपने जो कुछ कहा है यह सत्य है । मैं बिवाह करना चाहता हूँ । आपका और हमारा आपस में सम्बन्ध हो जाना बिलकुल ही ठीक है । इस प्रकार बिवाह का निश्चय हो जाने पर बड़े समारोह से महर्षि कर्दम और देवहूति का विवाह सम्पन्न हो गया महर्षि कर्दम गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर जीवन व्यतीत करन लगे । इस प्रकार रहते २ एक सौ वर्ष व्यतीत हो गए । उनके घर अनेक कन्याओं ने जन्म लिया किन्तु पुत्र एक भी न हुआ । एक दिन एकान्त में बैठ कर देवहूति ने कर्दम जी से प्रश्न किया :-

ब्रह्मन् दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः ।
कश्चित् स्यान्मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥

(भा. पु.)

महामुने, यह सब कन्याएं तो विवाहित होकर अपने पति के घर चली जायंगी, और आप भी आश्रम धर्म के अनुसार गृहस्थ छोड़ कर बन को चले जाओगे । अतः पश्चात् मैं किसके आधार से अपना जीवन व्यतीत करूंगी । महामुने ! कोई उपाय सोचिए देवहूति के वचन सुन कर कर्दम बोले :—

मा खिदो राजपुत्रीत्थं, आत्मानं प्रत्यनिन्दिते ।
भगवांस्ते क्षरो गर्भमदूरात्सम्प्रपत्स्यते ॥

(भा. पु.)

देवहूति ? इस प्रकार की चिन्ता मत करो। कुछ ही दिनों में श्री सच्चिदानन्द प्रभु तुम्हारे गर्भ में प्रवेश करने वाले हैं तुम तन-मन-धन से तत्पर होकर भगवान् का भजन करो। पति देव के उत्साह-पूर्ण वचन सुनकर उसी दिन से देवहूति जप-तप नियम आदि में संलग्न हो गई। देवहूति की सेवा और भक्ति से भगवान् प्रसन्न होगए। तथा देवहूति के गर्भ में प्रवेश किया। ठीक समय आने पर प्रभु का प्रादुर्भाव हो गया। व्यास जी लिखते हैं :-

तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः।
कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि ॥
अवादयं स्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः।
गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसो मुदा॥

(भा. पु.)

भगवान् कर्दम के घर इस प्रकार प्रादुर्भूत हुए जिस प्रकार लकड़ी से अग्नि हुआ करती है। उन समय स्वर्ग में बाजे बजने लगे तथा गन्धर्व और अप्सराएं नाचने और गाना गाने लगी। इस प्रकार महर्षि कर्दम के घर में श्री भगवान् कपिल जी का अवतार हुआ।

——

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो परीतास उद्भिदः।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥

(यजु. २५, १४)

सब ओर से भले भाव हमें प्राप्त हों। उन में कोई धोखा न दे सके। उनमें कोई रुकावट न पड़ सके। वे सदा उन्नत होते रहें। ताकि प्रमाद-रहित देवताओं से प्रेरणा पाते हुए हम प्रति दिन अधिक-अधिक वृद्धि को प्राप्त होते रहें।

मित्र द्रोह और कृतघ्नता

महाराज युधिष्ठिर ने एक बार भीष्म पितामह से पूछा कि संसार में किस व्यक्ति से मित्रता करनी चाहिये कृपया इसके सम्बन्ध में कुछ बतलाओ यह सुन कर भीष्म पितामह बोले कि राजन् ? संसार में जो आदमी मित्रद्रोह (मित्र से धोका) करे तथा जो कृतघ्न् (किये गये उपकारों को भूलने वाला) हो ऐसे आदमी से कभी भी मित्रता न करे। शास्त्रों में मित्र द्रोह और कृतघन् यह दोनों महा पाप माने गये हैं। महाराज युधिष्ठिर ? इस के सम्बन्ध में मैं आपको एक इतिहास सुनाता हूँ और यह घटना बिलकुल सच्ची हो चुकी है। भीष्म पितामह महाराज युधिष्ठिर को इतिहास सुनाते हैं। भीष्मपितामह बोलेः महाराज युधिष्ठिर ? मध्य प्रदेश में एक अशिक्षित, नीच और निर्धन गौतम नाम का ब्राह्मण रहता था, सदा ही भीख माँग कर निर्वाह करता था। वह गौत्तम एक दिन भीख माँगता २ एक चोरों की बस्ती में जा पहुँचा। वहाँ बहुत सारे चोर रहा करते थे। वहाँ रहने वाले एक चोर के हृदय में उस निर्धन ब्राह्मण को देख कर दया आ गई, और उस चोर ने उस ब्राह्मण को बहुत सारा धन, मकान, यहाँ तक कि एक सुन्दर स्त्री भी दान रूप में दे डाली। इसके पश्चात् वह गौतम नाम का ब्राह्मण वहाँ चोरों की बस्ती में ही रहने लगा। वे सब चोर चोरी तो करते ही थे किन्तु महा

पापी भी थे अर्थात् जंगलों में जाकर बहुत सारे पक्षियों को मार कर खाया करते थे। उस ब्राह्मण ने भी उनकी सङ्गति में रहकर शिकार खेलना सीख लिया। एक दिन एक दूसरा ब्राह्मण जो गौतम की ज भूमि के पास का ही रहने वाला था अर्थात् मध्य प्रदेश का रहने वाला था, अचानक ही गौतम के यहाँ आ पहुंचा। गौतम उस दिन शिकार खेलने गया हुआ था, किन्तु कुछ समय पश्चात् अनेकों मरे हुए पक्षियों को कन्धे पर उठा कर खून से लथ पथ घर पहुंच गया घर म आये हुए दूसरे ब्राह्मण ने गौतम की जब यह दशा देखी तो वह बड़े आश्चर्य में डूब गया और कहने लगा भाई गौतम ? तुमने यह क्या रूप बना रखा है। तुम्हारा जन्म विद्वान् ब्राह्मण कुल में हुआ है यह काम तुमको शोभा नहीं देता। यह सुन कर गौतम कहने लगा भाई क्या करूं इस दुष्ट पेट के लिये सब कुछ करना पड़ता है। महाराज युधिष्ठिर ? वह दूसरा ब्राह्मण एक रात्रि उसके पास ठहर कर दूसरे दिन चला गया, दूसरे ब्राह्मण की बातें गौतम के दिल में प्रभाव तो डाल गई. किन्तु वह विवश था। एक दिन वह गौतम समुद्र से रत्न निकालने की इच्छा से प्रातः काल ही समुद्र की ओर चल पड़ा। दैवयोग से वहाँ उसे एक व्यापारी मिल गया। व्यापारी ने उसको देख कर कहा भाई ? मैं भी अकेला हूं चलो साथ चलते हैं वे दोनों साथी बनकर चल पड़े। ईश्वर ईच्छा से रास्ते में उन्हें एक मस्त हाथी मिला, काफी रक्षा करने पर भी उस मस्त हाथो ने उस व्यापारी को मार डाला। अब गौतम अकेला रह गया। वह गौतम उस बन में चारों ओर दृष्टि डालता है, बह बन बड़ा सुन्दर था, चारों ओर अनेक प्रकार के पुष्प खिले हुए थे पक्षी चहचहा रहे थे। इतने में सहसा ही एक नाड़ी जंघ नाम बाला बगुला आगया। उस बगुले ने ब्राह्मण से कहा महाराज ? मैं तो आज धन्य हो गया हूं आप

मेरे घर में अतिथि आये हो। कहो कैसे आगमन हुआ मैं आप की क्या सेवा करूं। यह सुन कर ब्राह्मण ने कहा मैं धन की इच्छा से समुद्र की ओर निकला था, किन्तु चलते २ आपके पास पहुँच गया। बगुले ने कहा। चिन्ता मत करो आपकी धन की चिन्ता मैं दूर कर दूंगा। क्योंकि वृहस्पति जी ने लिखा है कि धन चार उपायों से प्राप्त होता है १ पूर्वजों की सम्पत्ति। २-भाग्यवश। ३-परिश्रम से। ४-मित्र की सहायता से। आज से मैं और आप दोनों मित्र बन गये हैं। मैं आपको उपाय बतलाता हूं। यहाँ से कोई ७ मील की दूरी पर विरूपाक्ष नाम वाला मेरा परम मित्र राक्षस रहता है। आप उसके पास जाओ और मेरा नाम लेकर कहना कि मुझे उसने भेजा है, बस इतने से ही आपकी सारी इच्छाएं पूर्ण हो जायेंगी। गौत्तम दूसरे दिन बिरूपाक्ष राक्षस के यहाँ पहुंचा तथा अपना सारा परिचय दिया। राक्षस के यहाँ उस दिन एक यज्ञ हो रहा था। गौत्तम को अतिथि समझ कर बहुत धन सम्पत्ति राक्षस ने दान रूप में दी। गौत्तम सारा सामान लेकर चल पड़ा तथा रात्रि को उस बगुले के यहाँ वापिस पहुंच गया। बगुले ने फिर भी बड़ा सत्कार किया। रात को दोनों सो गये। वह दुष्ट गौत्तम रात को यह सोचने लगा कि कल दिन में मैं ने बहुत यात्रा करनी है खाने को पास में कुछ नहीं है क्यों न इस बगुले को मार कर काम चलाया जाये। यह सोच कर उस दुष्टात्मा ने पास में सोये हुए उस बगुले को मार डाला, तथा उसका माँस बाँध कर चल पड़ा। कई दिन व्यतीत होने पर विरूपाक्ष राक्षस ने अपने पुत्र से कहा बेटा? वह हमारा मित्र बगुला कई दिनों से नहीं आया इस में कुछ रहस्य जान पड़ता है, तुम जाओ कुछ साथियों को लेकर बगुले की कुशलता का पता करो। राक्षस का पुत्र साथियों सहित बगुले के घर पहुंचा, वहाँ केवल बगुले की कुछ हड्डिएं और पंख मिले। यह दशा देख

कर वह ब्राह्मण का पीछा करने लगे। ब्राह्मण को अन्त में उन्हों ने पकड़ ही लिया। ब्राह्मण को पकड़ कर राक्षस के पास ले आये। राक्षस ने तुरन्त कहा कि यह गौत्तम मित्रद्रोही और कृतघ्न है इस को मार कर सब राक्षस खाजाओ। राक्षसों ने उसे मार तो दिया किन्तु मास खाने में असमर्थता प्रकट की। यहाँ तक कि कीड़ों मकोड़ों ने भी उसका माँस नहीं खाया। भीष्मपितामह बोले। राजा युधिष्ठिर ? सुना, मित्रद्रोह और कृतघ्नता करना कितना बड़ा पाप है। उस गौत्तम ब्राह्मण के साथ उस बगुले ने नेकी का बर्ताव किया किन्तु उस दुष्ट ने उसके उपकार के बदले उसका जीवन ही ले लिया। मित्रद्रोही से मनुष्य तो क्या पशु पक्षी भी घृणा करते हैं। इसलिये युधिष्ठिर ? जो आदमी मित्र से द्रोह करने वाले एवं कृतघ्न (किये गये उपकार को भूलने वाले) हो उन से दूर रहने में ही कल्याण है।

यस्माज्जातं न पुरा किञ्चनैव
य आबभूव भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया संरराण—
स्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी॥
(यजु. ३२.५)

वही सबसे पहले था। उससे पहले कुछ न था। सब लोक उसी से बने। वह सोलह कला सम्पूर्ण प्रजापति अपनी प्रजा के साथ सब आनन्द मनाता हुआ तीनों प्रकाशों का केन्द्र बना रहा है।

श्री भगवान् का सख्यभाव

इस प्रसङ्ग में यह बतलाया गया है कि श्री भगवान् को जो अपना मित्र बना लेता है, उस आदमी के साथ भगवान् कैसा व्यवहार करते हैं। भगवान् श्री राम और लक्ष्मण सीता की खोज करने ऋष्य मूक पर्वत पर पहुंचे। वहाँ अपने मन्त्रियों सहित सुग्रीव रहा करते थे। भगवान् श्री राम के पधारने पर सुग्रीव ने उनका बड़ा स्वागत किया, एवं अपना सारा दुःख राम के सामने प्रकट किया। सुग्रीव के भाई बाली ने सुग्रीव का राज्य तथा स्त्री सब कुछ छीन कर सुग्रीव को निकाल दिया था। सुग्रीव की यह दुःख भरी कहानी सुन कर भगवान श्री राम बोले:-

सुनु सुग्रीव मारिहउ बालिहि एक हिं बान ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएं न उबरिहि प्रान ॥

(रा. मा.)

सुग्रीव ? मैं एक ही बाण से बाली को मार डालूंगा। ब्रह्मा और रुद्र की शरण में जाने पर भी उसके प्राण न बच सकेंगे। श्री राम और बोले :—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी।
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥

(रा. मा.)

प्रिय सुग्रीव ? जो लोग मित्र के दुःख से दुखी नहीं होते, उन्हें देखने से भी बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के

समान और मित्र के धूल के समान दुःख को सुमेरु (बड़े भारी पर्वत) के समान जाने। और सुनो :—

जिन्ह कें असि मति सहज न आई।
ते सठ कत हठि करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।
गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥

(रा. मा.)

प्रिय सुग्रीव ? जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है, वे मूर्ख हठ करके क्यों किसी से मित्रता करते हैं ? मित्र का धर्म है कि वह मित्र को बुरे मार्ग से रोक कर अच्छे मार्ग पर चलावे। उसके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपावे। और सुनो :—

देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
विपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा।

(रा. मा.)

प्रिय सुग्रीव ? जो मित्र देने लेने में मन में शंका न करे। अपने बल के अनुसार सदा हित ही करता रहे। विपत्ति के समय में तो सदा सौ गुना स्नेह करे। वेद कहते हैं श्रेष्ठ मित्र के यही गुण होते हैं। अब मैं तुम्हें कुमित्र के लक्षण सुनाता हूँ। सुनो :—

आगें कह मृदु वचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जा कर चित अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेंहि भलाई॥

(रा.मा..)

जो सामने तो बना बना कर कोमल वचन कहता है और पीठ पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है। प्रिय सुग्रीव ? जिसका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को तो त्यागने में ही भलाई है। और सुनो :—

सेवक सठ नृप कृपन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी।
सखा सोच त्यागहु बल मोरें सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

(रा. मा)

मूर्ख सेवक, कंजूस राजा, दुष्ट स्त्री और कपटी मित्र ये चारों शूल के समान हैं। प्रिय मित्र सुग्रीव ? मेरे बल पर अब तुम चिन्ता छोड़ दो। मैं सब प्रकार से तुम्हारी सहायता करूंगा भगवान् श्री राम के ऐसे मित्रता पूर्ण वचन सुनकर सुग्रीव बड़े प्रसन्न हुए और भगवान् के चरणों बार बार प्रणाम करने लगे, तथा अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले :—

उपजा ग्यान वचन तब बोला नाथ कृपा मन भयउ अलोला॥
सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउ सेवकाई॥

(रा. मा.)

जब ज्ञान उत्पन्न हुआ तो सुग्रीव बोले कि हे नाथ ? आपकी कृपा से अब मेरा मन स्थिर हो गया सुख सम्पत्ति, परिवार और बड़ाई (बड़प्पन) सब को त्याग कर मैं आपकी ही सेवा करूंगा। सुग्रीव और बोले :-

ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं सन्त तब पद अवरारधक॥
सत्रु मित्र सुख दुख जगमाहीं। माया कृत परमारथ नाहीं॥

(रा. मा)

प्रभो ? आपके चरणों की आराधना करने वाले संत कहते हैं कि ये सब (सुख सम्पत्ति आदि) राम भक्ति के विरोधी हैं। संसार में जितने भी शत्रु मित्र और सुख–दुःख आदि द्वंद्व हैं, ये सब के सब माया रचित है, असली रूप में यह कुछ भी नहीं है। सुग्रीव और बोले :-

बालि परम हित जासु प्रसादा ।
मिले हु राम तुम्ह समन विषादा ॥
सपनें जेंह सन होइ लराई ।
जागें समुझत मन सकुचाई ॥
(रा. मा.

प्रभो ? बालि तो मेरा परम हितकारी है जिसकी कृपा से शोक का नाश करने वाले आप मुझे मिले और जिसके साथ अब स्वप्न में भी लड़ाई हो तो जागने पर उसे समझ कर मन में सकोच होगा (कि स्वप्न में भी मैं उससे क्यों लड़ा) असली रूप में यदि सोचा जाय तो यह राग द्वेष संसार में तब तक ही व्यवहार में आते हैं जब तक मनुष्य को आत्म-बोध नहीं हुआ। जब आत्मबोध हो जाता है तो सब राग द्वेष नष्ट हो जाते हैं।

वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निदाँसं च विचैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥
(यजु. .२, ८)

'तत् सत्' में सारा संसार समाया हुआ है। उसी में यह प्रविष्ट होता और उसी से यह विस्तृत हो रहा है। वह सारी प्रजाओं में ताने-बाने की तरह व्याप्त है। ज्ञानवान् उसे अपने हृदय की गुफा में विराजते हुए देखता है।

त्रिदेवों में अभेद सिद्धि

श्रीमद्भागवत के इस उपाख्यान में ब्रह्मा विष्णु शिव इन तीनों का एक रूप सिद्ध करने के लिये श्री भगवान एक रूप से तीन रूप सोम, दुर्वासा, एवं दत्तात्रेय के रूप में अवतार का वर्णन है। व्यास जी कहते हैं :—

ब्रह्मणा चोदितः सष्टावत्रिर्ब्रह्म वदांवरः ।
सह पत्न्या ययावृक्ष कुलाद्रि तपसि स्थितः ॥

(भा. पु.)

एक बार ब्रह्मा ने महर्षि अत्रि को सृष्टि का विस्तार करने की आज्ञा दी। महर्षि अत्रि ब्रह्मा की आज्ञा पाकर अपनी पत्नी अनुसूया सहित तपस्या करने के लिये ऋक्ष नामक पर्वत के ऊपर चले गये। उस पर्वत पर बड़ा सुन्दर बन था, चारों ओर अनेक प्रकार की लताएं और पुष्प थे, एवं निर्विन्ध्या नदी से निकलने वाले झरनों का कलकल निनाद कानों को आनन्दित करता था उस ऋक्ष पर्वत पर महर्षि अत्रि एक पाँव पर खड़ा हो कर एवं समाधिस्थ हो कर लगातार एक सौ वर्ष तक तपस्या करते रहें। महर्षि अत्रि के मन में संकल्प था कि मेरे घर में भगवान् जैसी सन्तान उत्पन्न हो। इस प्रकार तपस्या करते उनके मस्तक से अग्नि के समान एक प्रकाश निकला जिससे त्रिभुवन कांप उठा। सारे के सारे देवता एवं ब्रह्मा, विष्णु. महेश, यह तीनों महर्षि अत्रि के आश्रम में पहुँचे। महर्षि अत्रि की समाधि भङ्ग हुई, उन्होंने अपने सामने तीनों

देवताओं को खड़ा देख कर चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया । और कहने लगे :—

विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैः ।
मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः ॥
ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं वः ।
तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः ॥

(भा. पु.)

प्रभो ? संसार की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के निमित्त मायावश आपने यह तीन शरीर धारण किये हैं। मैं आप तीनों को प्रणाम करता हूँ और साथ यह भी पूछता हूँ कि आप तीनों में मैंने जिसको तपस्या द्वारा प्रसन्न किया है वह कौन है। अत्रि और बोले :—

एको मयेह भगवान्विविधप्रधानः ।
चित्ती कृतः प्रजननाथ कथं नु यूयम् ॥
अत्रागतास्तनुभृतां मनसोऽपि दूराः ।
ब्रूत प्रसीदत महानिह विस्मयो मे ॥

(भा. पु.)

प्रभो ? मैं एक बात आप से और पूछता हूं। मैं ने तो केवल एक को ही सन्तान रूप में प्राप्त करने के लिये इतनी उग्र तपस्या की है, किन्तु आप तीनों ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, एक दम यहाँ पधारे हैं, जिनका कभी मनुष्य को स्वप्न में भी दर्शन नहीं हो सकता। प्रभो प्रसन्नता पूर्वक बतलाइये मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। अत्रि के यह वचन सुन कर श्री भगवान् बोले :—

यथा कृतस्ते संकल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा ।
सत्संकल्पस्य ते ब्रह्मन्यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥

(भा. पु.)

महर्षि ? जैसा आपने संकल्प किया है वह वैसा ही होगा, आप ने एक परब्रह्मस्वरूप का चिन्तन किया है तो हम तीनों ब्रह्म, विष्णु शिव भी तो एक परब्रह्म तत्त्व रूप ही है हम तीनों में कोई भेद नहीं है। हम तीनों में जो भेद समझता है वह अज्ञानी है। इस लिये तुम बिलकुल भी ऐसा विचार मत करो। हम तीनों ही तुम्हारे घर तीन पुत्रों के रूप में अवतरित होंगे और तुम्हारे यज्ञ को त्रिभुवन में प्रकाशित करेंगे। महर्षि अत्रि को ऐसा बरदान देकर, ब्रह्मा विष्णु, शिव, यह तीनों देबता अपने धाम चले गये। व्यास जी लिखते हैं ;—

सोमोऽभूद् ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित।
दुर्वासाः शंकरस्यांशो निवोधाङ्गिरसः प्रजाः ॥

(भा. पु.)

महर्षि अत्रि की पत्नी अनुसूया को गर्भ से ब्रह्मा के अंश से सोम का जन्म, श्रीभगवान् विष्णु के अंश से दत्तात्रेय का जन्म, तथा श्री भगवान् शंकर के अंश से दुर्वासा का जन्म हुआ। श्री भगवान् ने इस लीला का प्रदर्शन इसलिये किया कि मैं संसार में कार्य करने के लिये तीनों रूपों में आता हूँ किन्तु असली रूप में मैं एक तत्त्व रूप ही हूँ। तथापि जो व्यक्ति मुझे जिस रूप में भजता है मैं उसी रूप में आकर उसकी कामनाओं को पूर्ण करता हूँ।

बुद्धि का चमत्कार

एक बार यह जानने के लिये, कि मनुष्य को सबसे अधिक सुखी और सम्पन्न तथा बलवान् क्या वस्तु बना सकती है, युधिष्ठिर भीष्म पितामह से पूछने लगे युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि भीष्म पितामह ? इस संसार में मनुष्य किस प्रकार स्वस्थ, दीर्घजीवी, और सुखी हो सकता है। क्या इन वस्तुओं को वह अपने बन्धु बान्धवों या मित्रों से प्राप्त कर सकता है ? या तन्त्र मन्त्र और औषध आदि से ? या यज्ञादिक पुण्य कर्मों से ? अथवा बुद्धि से ही यह सुखादिक प्राप्त हो सकते हैं ?

इस प्रश्न को सुनकर श्री भीष्म पितामह कहने लगे कि राजन ! मनुष्य की प्रतिष्ठा, मान आदि सभी बातें बुद्धि के द्वारा ही सिद्ध होती हैं। बुद्धि ही मनुष्य को लाभ और धन प्राप्ति का उपाय बताती है। बुद्धि के बिना संचित और एकत्रित किए हुए धन की रक्षा करना भी कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। बुद्धि ही मनुष्य को युक्त कर कती है और स्वर्ग प्रदान भी कर सकती है।

इस सम्बन्ध में युधिष्ठिर ? मैं तुम्हें इन्द्र और महर्षि काश्यप का सम्वाद सुनाता हूँ, जिससे तुम बुद्धि की विशेषता के सम्बन्ध में और भी भली प्रकार जान सको।

काश्यप ऋषि एक बार मार्ग में किसी ओर जा रहे थे। इधर से एक धनिक वैश्य (बनिये) का रथ आ रहा था। तेजी से चलते हुए रथ

की चोट काश्यप जी को लग गई। इस आघात (चोट) के कारण वह पृथ्वी पर गिर पड़े। महर्षि काश्यप को इस बात से बहुत दुःख हुआ और इस दुःख के कारण बुद्धि में भी अन्तर आगया। इस कारण वह सोचने लगे, ओह? निर्धनों का जीवन भी कुछ नहीं है। धनिक लोग उन्हें इस प्रकार अपने पैरों के नीचे कुचल देते हैं जिस प्रकार इस वैश्य के रथ ने मुझे गिरा दिया था। अब मैं जीना नहीं चाहता, यह विचार कर महर्षि काश्यप आत्म-हत्या करने के लिये तैय्यार हो गये।

इस बात को देखकर महाराज इन्द्र को बड़ा दुःख हुआ। वह सोचने लगे कि इस योग्य व्यक्ति काश्यप की किस प्रकार रक्षा करें?

क्योंकि यह एक महात्मा है, और भविष्य में देश का और मानव-जाति का बहुत कुछ उपकार कर सकता है। अतः इसको अवश्य बचाना चाहिए। नहीं तो यह आत्म हत्या कर रहा है। यह सब बुद्धि से भलीभान्ति विचार कर इन्द्र ने वेष वदल कर शृंगाल (सियार) की बोली में उस ऋषि से इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया कि धन-के लोभी काश्यप इस संसार के सभी प्राणी, जो मनष्य जाति को छोड़कर किसी दूसरी पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि की योनियों में नाना प्रकार के दुःखों को भोग रहे हैं, वे सब मनुष्य जाति में जन्म पाने को बड़े लालायित और उत्सुक रहते हैं। और मनुष्य जन्म पाकर भी वे ही लोग धन्य हैं, जो सद्विचार और सद्भावना से युक्त हों, तथा सब प्राणियों से प्रेम करने वाले, ऊचे विचारों वाले तथा वेदादि शास्त्रों के जानने वाले हों।

काश्यप? तुम में यह सभी गुण हैं। अतः तुम इस प्रकार आत्महत्या नहीं कर सकते। हमें भी तो देखो? हम चाहते हैं कि यदि हमारे भी हाथ होते तो हम बहुत ही सुखी होते क्योंकि बिना हाथों से हम कुछ भी

अपने सुख के लिये कार्य नहीं कर सकते तुम्हारे तो हाथ हैं और इन हाथों से धूप और वर्षा से वचने के लिये तुमने घर बनाए हैं । ठण्ड और दूसरी बातों से रक्षा करने के लिये तुम वस्त्र आदि सब कुछ बना सकते हो। सोने को शय्या बिस्तर) दूध पीने को गाएं रेखते हो। हमारे जैसे जो विना हाथ के हैं हम सब दुःखों को भोगते हैं तुम कितने धन्य हो काश्यप ? जो सियार, सर्प, मूषक, और दूसरी कीड़ों मकोड़ों की पाप-योनि में नहीं जन्मे हों। परन्तु खेद है कि इतना होने पर भी तुम धन के लोभ से अपने आपको नष्ट कर रहे हो। पर मैं यह बता दू कि यदि तुम धनिक बन जाओगे तो तुम्हारी इच्छा देवता बनने की होगी और यदि देवता भी बनोगे तो इन्द्र बनने को मन चाहेगा। इस प्रकार यह तृष्णा कभी भी शान्त न हो सकेगी। चाहे तुम्हारी कितनी ही बातें पूरी हो जायं। जिस प्रकार घी की आहुति से आग कभी भी बुझती नहीं अपितु बढ़ती ही जाती है इसी प्रकार तृष्णा भी बढ़ती जाती है। अतः इन सब तृष्णाओं को उत्पन्न करने वाली इन्द्रियों पर वश करने वाली सद्बुद्धि ही है। उस बुद्धि का आश्रय लेकर अपने जीवन की रक्षा करो। इस बुद्धिहीनता को छोड़ दो।

इस प्रकार इन बातों से काश्यप की बुद्धि जाग उठी और अपने सामने महाराज इन्द्र को दिव्य वेष में देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ, तथा मरने का विचार छोड़ दिया। उसके वाद काश्यप ने अपनी बुद्धि से विषयों पर कई ग्रन्थ लिखे जिनमें से कुछ आज भी विद्यमान है। जिसके कारण वह आज भी अमर हैं। यह है बुद्धि का चमत्कार। भीष्म युधिष्ठिर से बोले, युधिष्ठिर देखा तुमने बुद्धि का कितना प्रभाव होता है। संसार में मनुष्य बुद्धि—बल से बड़े २ काम कर सकता है यदि इस समय काश्यप को बुद्धि न आती तो वह अपना अमूल्य जीवन खो बैठते।

वालि का उद्धार

श्री भगवान् श्री राम सुग्रीव द्वारा वालि के अत्याचारों का वर्णन सुन कर उसे मारने के लिये तैयार हो गये। तुलसी जी कहते हैं :—

मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला ।।
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई ।।
(रा. मा.)

भगवान् श्री राम ने सुग्रीव के गले में फूलों की माला डाल दी और फिर उसे बड़ा भारी बल देकर बालि के साथ युद्ध के लिये भेजा। दोनों में पुनः अनेक प्रकार से युद्ध हुआ। श्री राम वृक्ष की आड़ से देख रहे थे। सुग्रीव ने बहुत से छल बल किये, किन्तु अन्त में भय मान कर हृदय से हार गया तब तुरन्त ही श्री राम ने तान कर वालि के हृदय में बाण मारा। तुलसी जी कहते हैं :—

परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें।
स्याम गात सिर जटा बनाएँ। अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ ।।
(रा. मा.)

बाण के लगते ही वालि व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, किन्तु श्री राम चन्द्र जी को आगे देख कर वह फिर उठ बैठा। भगवान् का श्याम शरीर है, सिर पर जटा बनाये हैं, लाल नेत्र है, बाण लिये हैं और धनुष चढ़ाए हैं। वह श्री राम की ओर देख कर बोला :—

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं । मारेहु मोहि व्याध की नाईं ॥
मैं वैरी सुग्रीव पिआरा । अवगुन कवन नाथ मोहि मारा ॥
(रा. मा.)

प्रभो ? आपने धर्म की रक्षा के लिये अवतार लिया है और मुझे व्याध (शिकारी) की तरह छिपकर मारा मैं वैरी और सुग्रीव प्यारा । प्रभो ? किस दोष से आपने मुझे मारा है । यह सुन कर श्री राम बोले :—

अनुज वधू भगिनी सुत नारी । सुनु सठ कन्या सम ए चारी ॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई । ताहि वधे कछु पाप न होई ॥
(रा. मा.)

मूर्ख वालि ? सुन, छोटे भाई की स्त्री, वहिन, पुत्र की स्त्री, और कन्या — ये चारों समान हैं । इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता । यह सुनकर वालि ने कहा :—

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि ।
प्रभु अजहूं मैं पापी अंतकाल गति तोरि ॥
(रा. मा)

प्रभो ? सुनिये, स्वामी आप से मेरी चतुराई नहीं चल सकती । प्रभो ? अन्तकाल में आपकी शरण पाकर भी मैं अब भी पापी ही रहा । यह सुन कर श्री राम ने उसके सिर का अपने हाथ से स्पर्श किया और कहा — मैं तुम्हारे शरीर को सदा के लिये अमर बना देता हूँ । यह सुन कर वालि ने कहा — कृपा निधान, सुनिये :—

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं ॥
जासु नाम बल संकर कासी । देत सबहि सम गति अविनासी ॥
(रा. मा.)

प्रभो ? मुनि लोग प्रत्येक जन्म में अनेकों प्रकार की साधना करते रहते हैं। फिर भी अन्तकाल में उनसे राम नहीं कहा जाता। राम नाम के बल से शंकर जी काशी में सब को समान रूप से मुक्ति देते हैं। वह श्रीराम स्वयं मेंरे नेत्रों के सामने आ गये हैं। प्रभो ? ऐसा संयोग क्या फिर कभी बन पड़ेगा ? बालि और बोला :—

सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गाव हीं।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुंक पाव हीं॥
मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीर हीं।
अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु बारि करिहि बबूर हीं॥

(रा. मा.)

प्रभो ? श्रुतियाँ ''नेति-नेति'' कह कर निरन्तर जिनका गुण गान करती रहती हैं तथा प्राण और मन को जीत कर एवं इन्द्रियों को नीरस बना कर मुनिगण ध्यान में जिन की कभी ही झलक पाते हैं, वे ही प्रभु (आप) साक्षात् मेरे सामने प्रकट हैं। आपने मुझे अत्यन्त अभिमान वश जान कर यह कहा कि तुम शरीर रख लो। परन्तु ऐसा मूर्ख कौन होगा जो हठ पूर्वक कल्प वृक्ष को काट कर उस से बबूर के बाड़ लगायेगा। अर्थात् पूर्ण काम बना देने वाले आपको छोड़ कर आप से नश्वर शरीर की रक्षा चाहेगा ? बालि और बोला :—

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो वर मागऊं।
जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहं राम पद अनुरागऊं॥

यह तनय मम सम बिनय बल कल्यान प्रद प्रभु लीजिऐ।
गहि बांह सुर नर नाह आपन दास अगद कीजिऐ॥

(रा. मा.)

प्रभो ? अब मुझ पर दया दृष्टि कीजिए और मैं जो वर माँगता हूं उसे दीजिये। में कर्मवश जिस योनि में जन्म लूं, वहीं आप के चरणों में प्रेम करूं ? प्रभो ? यह मेरा पुत्र अंगद विनय और बल में मेरे ही समान है, इसे स्वीकार कीजिए और नाथ ? बाँह पकड़ कर इसे अपना दास बनाइये। तुलसी जी कहते हैं :—

राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठते गिरत न जानइ नाग।।
(रा. मा.)

श्री राम के चरणों में दृढ़ प्रीति करके वालि ने शरीर को वैसे ही आसानी से त्याग दिया जैसे हाथी अपने गले से फूलों की माला का गिरना अनुभव नहीं कर सकता। अर्थात् वालि ने आनन्द पूर्वक शरीर छोड़ दिया।

द्यौश्च म इदं पृथिवी चान्तरिक्षं च मे व्यचः।
अग्निः सूर्य आपो मेधां विश्वे देवाश्च संददुः।।
(अथर्व १२ १, ५३)

यह द्युलोक और यह पृथिवी लोक मुझे मेधा दे रहे हैं। यह विस्तृत मध्यलोक मुझे मेधा दे रहा है। अग्नि, सूर्य और जल मुझे मेधा दे रहे हैं। सब देवता मुझे मेधा दे रहे हैं। (मुझे जागृत होना चाहिए)।

राजा प्रियव्रत का पराक्रम

इस उपाख्यान में यह सिद्ध किया गया है कि मनुष्य गृहस्थ में रहता हुआ भी भगवान् के दर्शन पा सकता है। महामुनि शुकदेव राजा परीक्षित को भागवत कथा सुना रहे हैं। राजा परीक्षित शुकदेव जी से पूछते हैं :—

प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने ।
गृहेऽरमत वन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ॥
संशयोऽयं महान् ब्रह्मन् दारागारसुतादिषु ।
सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत् कृष्णे च मतिरच्युता ॥

(भा. पु.)

महामुने ! भगवत् भक्त महाराजा प्रिय व्रत बड़े विख्यात सुने जाते हैं, तथा उनके सम्बन्ध में यह भी सुना जाता है कि वह गृहस्थ में रहते हुए ही प्रभु के कृपा पात्र बन गये थे। प्रभो बड़ा आश्चर्य हो रहा है कृपया मेरा यह सन्देह दूर कीजिए। राजा परीक्षित के वचन सुन कर शुकदेव बोले :–

राजन् ? आप जो कुछ कह रहे हो वह सब ठीक है। मैं आपको राजा प्रियव्रत के जीवन के सम्बन्ध में बतलाता हूँ। सुनिए, राजा प्रिय व्रत के पिता ने जब उन्हें राज्य सिंहासन दे दिया तो वे उसी दिन से भगवान् के चिन्तन और सत्पुरुषों की सेवा में संलग्न हो गये। श्री नारद जी का सत्सङ्ग पाकर प्रियव्रत ने बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया। श्री

भगवान् गृहस्थ में रहते हुए और सारा राज्य शासन करते हुए राजा प्रिय व्रत की अत्यन्त भक्ति देख कर प्रसन्न हो गए तथा राजा प्रियव्रत को दर्शन दिया। श्री भगवान् बोले :-

भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्यात् — ।
यतः स आस्ते सह षट् सपत्नः ॥
जितेन्द्रियस्यात्मरते बुधस्य ।
गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम ।

(भा. पु.)

राजा प्रियव्रत ? मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूं। क्योंकि तुमने सारे कार्य करते हुए भक्ति द्वारा मुझे प्रसन्न किया है, असली रूप में यही सरल मार्ग है. यदि मनुष्य गृहस्थ आदि का परित्याग कर बनों में चला जाता है तो वहाँ पर भी तो, काम, क्रोध, लोभ, मद, एवं मत्सरता यह छ शत्रु साथ ही रहते हैं। जो व्यक्ति इन छ शत्रुओं को वश न कर सका, उसका सब कुछ त्याग कर सन्यास लेना भी तो व्यर्थ ही है। जिस ने इन छहों को वश में कर लिया है वह गृहस्थ में रहता हुआ भी जीवन सफल कर सकता है। राजा प्रियव्रत ? तुमने तो इन काम क्रोधादिकों को वश में कर रखा है अतः गृहस्थ में रह कर ही अपना जीवन सफल बनाओ। श्री भगवान का वचन श्रवण कर राजा बड़े प्रसन्न हुए तथा राज्य भोगने लगे। एक दिन राजा प्रिय व्रत के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि सूर्य भगवान् सारे भूमण्डल को आधे २ रूप में प्रकाश देते हैं। अर्थात् एक भाग में जब दिन होता है तो दूसरे भाग में रात होती है क्यों न सदा दिन ही रहे। यह सोच कर उन्होंने अपना रथ तैयार किया और सूर्य मण्डल के चारों ओर सात चक्कर काटे, राजा के रथ के पहियों से चारों ओर सात खाइयें पड़ गईं जिनसे सात द्वीप बन गये।

उन के नाम इस प्रकार । जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलि द्वीप, कुश द्वीप, क्रौञ्च द्वीप, शाक द्वीप, पुष्कर द्वीप। राजा प्रियव्रत इतने पराक्रमी थे। इस प्रकार राजा प्रियव्रत शासन करने लगे। एक दिन विचार उत्पन्न हुआ कि मैंने व्यर्थ इतना समय नष्ट कर दिया, अब मुझे इसका परित्याग कर देना चाहिये क्योंकि साँसारिक भोग भोगने से समाप्त नहीं हुआ करते अपितु मनुष्य ही भोगा जाता है। यह सोच कर राज्य भार पुत्रों को सौंप कर एकान्त में भगवदुपासना में लग गये। शुकदेव बोले :— राजा परीक्षित ? जो मनुष्य काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, और मत्सरता, इन सब को वश में कर लेता है वह गृहस्थ में रहते हुए भी श्री भगवान् का साक्षात्कार कर सकता है उसे त्याग कर सन्यास लेने की आवश्यकता नहीं।

यामृषयो भूतकृतो मेधां मेधाविनो विदुः ।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कृणु ॥

(अथर्व ६, १०९, ४)

हे मेधाशक्ति। तेरी कृपा से ऋषि लोग तुझ से विभूषित होकर (नानाविध वैज्ञानिक) सृष्टि के रचने वाले हुए। आ (इस याज्ञिक) अग्नि (के प्रकाश में) हमारे अन्दर प्रवेश कर हमें भी समझदार बना दे।

मेधां सायं मेधा प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि ।
मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वयसा वेशयामहे ॥

(अथर्व ६, १०९, ५)

हे मेधा शक्ति ! सायं हो या प्रातः, हम तेरी ही आराधना करते हैं। हम दोपहर के प्रकाश में सूर्य की किरणों द्वारा और वाणी (की शक्ति) द्वारा तुझे (अपने अन्दर) दाखिल करते हैं।

अभिमान

एक बार महाराज युधिष्ठिर ने श्री भीष्म पितामह से पूछा :— कि पितामह ! एक जाजलि नामक महर्षि पहिले हो चुके हैं, उनकी परम साधना में भी एक महान् विघ्न उपस्थित हो गया था, और उस कठिन तपस्या से भी वह सिद्धि न पा सके, इस मे क्या रहस्य और कारण था। क्या उन्होंने कोई दुष्कर्म किया था ? जिस से उनकी बहुत दिनों की साधना भी नष्ट हो गई।

भीष्म पितामह कहने लगे कि युधिष्ठिर ! इस सारे रहस्य को मैं तुम्हें बतलाता हूँ।

एक बार जाजलि नामक महर्षि बन मे जाकर घोर तपस्या करने लगे। वह प्रातः काल और सायं काल दोनों समय स्नान कर लेते यथा विधि अग्निताप और स्वाध्याय भी कर लेते थे। इस प्रकार बह एक तेजस्वी व्यक्ति बन गए किन्तु लौकिक धर्म का ज्ञान उन्हें न था।

समय बीतने पर वर्षा ऋतु का प्रारम्भ हुआ और वह आकाश की ओर मुख करके तपस्या करने लगे। क्योंकि वह हेमन्त ऋतु (सर्दी की मौसम) में बर्फ के बीच में तप करते, और गर्मी के दिनों में कड़कती हुई धूप में बैठते, तथा बर्षा में आकाश की ओर मुख करके तपस्या करते थे। बर्षा जोरो पर थी। वह चिरकाल तक बर्षा के पानी को अपने सिर पर ग्रहण करते रहे। उसके सारे बाल उलझे हुए और कठोर बन गए। वह कभी वायु का भोजन करते कभी निराहार व्रत रखते। इस प्रकार

वह एक चेष्टा रहित सूखे वृक्ष के समान निश्चल हो कर तपस्या कर रहे थे। तपस्या करते हुए जाजलिको पक्षियों ने एक सूखा वृक्ष समझ लिया और उनके सिर पर उन्होंने अपना घौंसला बना लिया किन्तु दया के कारण वह महर्षि हिले डुले तक नहीं।

उन पक्षियों को भी पूर्ण विश्वास हो गया कि यह एक चेष्टा हीन वृक्ष ही है। वह उनके सिर पर बनाए हुए अपने घर में विश्वास पूर्बक तथा प्रेम से रहने लगे कुछ दिनों के उपरान्त जब शरद ऋतु का आगमन हुआ, उन पक्षियों के सन्तान हो गई और वह अण्डे ऋषि के सिर पर बन हुए घौंसले में ही उत्पन्न हुए। अण्डों से समय आने पर छोटे २ पक्षिगण निकले और वह दिन प्रति दिन बढ़ने लगे। जब वे बड़े हो गये तो उनके पंख निकल आए। अब प्रति दिन वे सारे पक्षी प्रातः काल अपने घर से निकल जाते और सायं काल में फिर उसी अपने घौंसले में वापिस चले आते। बहुत दिनों तक यही क्रम रहा। एक दिन उन बच्चों के माता पिता उनको वहीं छोड़ कर कही चले गए। किन्तु वे पक्षी फिर भी उसी प्रकार उस अपने घौंसले में रहने लगे एक दिन वे पक्षी ३-४ दिनों के लिये कहीं बाहर निकल गए परन्तु फिर लौट आए। इस पर भी वह तपस्वी उसी प्रकार स्थिर रहे इसके बाद वह पक्षियों के बच्चे उस स्थान को छोड़कर कहीं चले गए और एक महीने तक भी वापिस नही आए।

तपस्वी जाजलि को इस प्रकार अपनी तपस्या पर अभिमान हो गया। उन्होंने सोचा संसार मे मेरे समान तपस्वी कोई नहीं। इसी अभिमान के कारण दोनों हाथों को ऊपर उठाकर घोषणा की कि मैं संसार में एक महान् तपस्वी बन गया हूं। इस बात को सुनते ही आकाश से शब्द हुआ। तपस्वी! तुम अपने इस अहंकार के कारण अपनी तपस्या में सफल नहीं हो सके हो। तुम्हें तो अभी तक यह पता भी नहीं कि धर्म क्या वस्तु है। अतः तुम सिद्ध नहीं हो।

जाओ ! और देखो कि बनारस में एक तुलाधार नाम का वैश्य रहता है। वह कितना सिद्ध पुरुष है। उस से अपने जीवन–सुधार के लिये तुम कुछ बातें सीखो।

इस आकाशबाणी को सुन कर वह आश्चर्य चकित हो गये और उस वैश्य के पास निरभिमान हो कर चले गये। तुलाधार वैश्य ने उनका बड़ा सम्मान और आदर किया तथा उनके आने का सारा कारण वह अपने तपोबल से ही जान गया।

तुलाधार से फिर भी जाजलि ने नम्रता-पूर्वक पूछा :- महामते ! तुम एक व्यापारी हो अनेकों प्रकार की अच्छी और बुरी वस्तुओं को बेचते हो, परन्तु फिर भी तुम एक महा मानव हो। तुम्हें यह सिद्धि ऐसी अवस्था में रहते हुए भी किस प्रकार प्राप्त हो गई।

तुलाधार ने कहा:—जाजलि ! मैं ने सारे वेद, धर्म के रहस्य के सहित पढ़े हैं। और उनके अनुसार मैं आचरण भी करता हूँ। यह जो मैंने अपने रहने के लिये स्थान बनाया है, यह केवल उन तृणों और लकड़ियों से बनाया गया है जिनको दूसरे लोगों ने काटा था। दूसरे जो २ वस्तुएं मैं बेचता हूँ उनके बारे में भी मैं स्वयं कोई पाप नहीं करता। जिन २ वस्तुओं को मैं बेचता हूँ, उन सबको दूसरों से मोल लेकर ही बेचता हूँ। मेरी तकड़ी कभी भी ज्यादा कम नहीं तोलती। सब लोगों के लिये मैं सदा समान तोलता हूँ।

किसी भी प्राणी को मेरे कारण थोड़ा भी कष्ट न हो मैं निरन्तर ऐसा प्रयत्न करता हूँ। परन्तु इन बातों पर मुझे तनिक भी अभिमान नहीं होता यही मेरी सिद्धि के कारण हैं।

भीष्म बोले युधिष्ठिर ! अब तुम समझ गए होंगे इस जाजलि और तुलाधार के उपाख्यान से कि निरभिमान होकर ही सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, और चाहे मनुष्य कितने से कितना बड़ा काम करले, यदि उसमें अभिमान है तो वह न किये के समान होता है। जिस प्रकार जाजलि की इतनी कठिन तपस्या का भी कोई लाभ नहीं हुआ। अतः अभिमान रहित होकर ही सारे कार्य करने चाहिए।

जितात्मा जितक्रोधः

सम्यग् भवति यः सदा ।

विषये वर्तमानोऽपि

न स पापेन युज्यते ॥

जो मनुष्य रागद्वेष से ऊपर उठ जाता है और रागद्वेष से होने वाले क्रोध को ठीक प्रकार से जीत लेता है, वह विषयों में रहता हुआ भी पाप से लिप्त नहीं होता।

वर्षा ऋतु

रामायण के इस वर्षा वर्णन में साथ २ जीवनोपयोगी उपदेश भ दिया गया है। श्री भगवान् राम लक्ष्मण सहित प्रवर्षण पर्वत पर निवास कर रहे हैं। वहाँ रहते २ वर्षा ऋतु का आगमन हुआ। भगवान् श्री राम लक्ष्मण से बोले :—

लछिमन देखु मोर गन नाचत वारिद पेखि ।
गृही विरति रत हरष जस विष्णु भगत कहुं देखि ॥
(रा. मा.

प्रिय लक्ष्मण ? देखो, मोरों के झुंड बादलों को देखकर नाच रहे हैं। जैसे वैराग्य के प्रेमी गृहस्थी किसी विष्णु भक्त को देख कर प्रसन्न होते हैं। और देखो :—

घन घमंड नभ गरजत घोरा, प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमक रह न घन माहीं, खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं
(रा. मा.)

आकाश में बादल घुमड़ घुमड़ कर घोर गर्जना कर रहे हैं, प्रिय (सीता जी) के बिना मेरा मन डर रहा है। बिजली की चमक बादल में ठहरती नहीं, जैसे दुष्ट की प्रीति स्थिर नहीं रहती। और सुनो :—

बरषहिं जलद भूमि निअराए, जथा नवहिं बुध विद्या पाएं ।
बूंद अघात सहहिं गिरि कैसें, खल के वचन संत सह जैसे ।
(रा. मा.)

बादल पृथ्वी के समीप आकर (नीचे उतर कर) बरस रहे हैं, जैसे विद्या पाकर विद्वान् नम्र हो जाते हैं। बूंदों की चोट पर्वत कैसे सहते हैं, जैसे दुष्टों के वचन संत सहते हैं। और सुनो :-

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा ।
जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महुं जाई ।
होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥ (रा. मा.)

जल एकत्र हो-हों कर तालाबों में भर रहा है, जैसे सद्गुण (एक-एक कर) सज्जन के पास चले जाते हैं। नदी का जल समुद्र में जाकर वैसे ही स्थिर हो जाता है, जैसे जीव श्री हरि को पा कर अचल (आवागमन से मुक्त) अर्थात् जन्म मरण से रहित हो जाता है। और सुनो :—

दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई, वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ।
नव पल्लव भए विटप अनेका, साधक मन जस मिलें विवेका ।
(रा. मा.)

चारों दिशाओं में मेंडकों की ध्वनि ऐसी सुहावनी लगती हैं, मानों बहुत सारे विद्यार्थी वेद पढ़ रहे हों। अनेकों वृक्षों में नये पत्ते आगये हैं, जिससे वे ऐसे हरे भरे एवं सुशोभित हो गये हैं जैसे साधक का मन विवेक (ज्ञान) प्राप्त होने पर हो जाता है। और सुनो :—

ससि सम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपति जैसी ।
निसि तम घन खद्योत बिराजा, जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा ।
(रा. मा.)

अन्न से मुक्त (लहलहाती हुई खेती से हरी भरी) पृथ्वी कैसी शोभित हो रही है, जैसी उपकारी पुरुष की सम्पत्ति होती है। रात के घने अन्धकार में जूगनू शोभा पा रहे हैं, मानो दम्भियों का समाज आ जुटा हो। और सुनो :—

विविध जंतु संकुल महि भ्राजा, प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।
जहं तहं रहे पथिक थकि नाना, जिमि इन्द्रिय गन उपजें ग्याना।
(रा. मा.)

पृथ्वी अनेक तरह के जीवों से भरी हुई उसी तरह शोभायमान है, जैसे सुराज्य पाकर प्रजा की वृद्धि होती है। जहाँ तहाँ अनेक पथिक थक कर ठहरे हुए हैं, जैसे ज्ञान उत्पन्न होने पर इन्द्रियाँ शिथिल होकर विषयों की ओर जाना छोड़ देती हैं। और सुनो :—

कबहुँ प्रबल बह मारुत जहं तहं मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं।
(रा. मा.)

कभी कभी वायु बड़े जोर से चलने लगती है, जिससे बादल जहाँ तहां गायब हो जाते हैं। जैसे कुपुत्र के उत्पन्न होने से कुल के उत्तम धर्म नष्ट हो जाते हैं। और सुनो :—

कबहुँ दिवस महं निविड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग।
(रा. मा.)

कभी बादलों के कारण दिन में अन्धकार छा जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाते हैं। जैसे कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और सुसंग पाकर उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार प्रवर्षण पर्वत पर श्री राम और लक्ष्मण का वर्षा ऋतु का समय बड़ा आनन्द पूर्वक व्यतीत हुआ।

हरिनाम प्रभाव

इस उपाख्यान में प्रभु नामोच्चारण का प्रभाव बतलाया गया है। राजा परीक्षित शुकदेव जी से पूछते हैं :-

अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः ।
नानाग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।।

(भा. पु.)

महामुने ? कोई ऐसा उपाय बतलाइये जिससे मनुष्य नरक की घोर यातनाओं से बच सके। यह सुन कर शुकदेव जी बोले :-

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयोः ।
निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह ।
न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान् ।
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ।

(भा. पु.)

परीक्षित ? जिन्होंने प्रेम पूर्वक अपने मन को भगवान् के चरणों में एक बार भी लगा लिया, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। हरिनाम के प्रभाव से स्वप्न में भी यमराज के दूत उनके सामने नहीं आ सकते हैं। इसके सम्बन्ध में मैं तुमको एक इतिहास सुनाता हूँ. कान्य कुब्ज (कन्नौज) में एक अजामिल नाम का ब्राह्मण रहता था। वह ब्राह्मण बड़ा दुराचारी था। जुआखोरी, चोरी, आदि बुरे कर्मों से अपनी आजीबिका करता था। इस प्रकार कुकर्म करते २ उसकी ८८ वर्ष की आयु हो गई

तथा रोग ग्रस्त हो कर मृत्युशय्या पर पड़ गया जब उसके प्राण निकलने लगे तो उसके जन्म भर का हिसाब किताव लेकर यमदूत उसके सामने आकर खड़े हो गये। वह उनका भयङ्कर रूप देखकर डर गया, भय के कारण अपने १० पुत्रों में सब से छोटे पुत्र को उसने वुलाया उन का नाम नारायण था, अपने पुत्र के नाम के वहाने नारायण नाम लेते ही भगवान् के दूत भी आ पहुंचे यमराज के दूतों में तथा भगवान् के दूतों में आपस में बड़ा सम्वाद हुआ। यमदूत कहने लगे कि इस अजामिल ने जन्म भर अति घोर कुकर्म किये हैं अतः इस पर हमारा अधिकार है। यह सुन कर भगवान् के दूत बोले :–

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि
यद्‌व्याजहार विष्णो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ।
एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्
यदा नारायणेति जगाद चतुरक्षरम् । (भा. पु.)

इस अजामिल ने नारायण यह चार अक्षर उच्चारण करके न केवल इस जन्म के ही अपितु करोड़ों जन्मों के महापाप नष्ट कर डाले हैं। यमदूतों ? अब इसके बिलकुल भी पाप शेष नहीं है जिस से इस पर आपका अधिकार हो सके भगवान के दूतों की बातें सुन कर यमदूत यमराज के पास पहुंचे और कहने लगे महाराज इस संसार में आपके अतिरिक्त कोई और भी राज्य करता है यदि ऐसी बात है तो कृपया हमें समझा दीजिये, यह सुन कर यमराज बोले :–

परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च ।
ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् ।।
यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशाः ।
नस्योतवद्यस्य वशे च लोकः ।।

(भा. पु.)

दूतों ? जिन हम जैसों को तुम सब से बड़ा समझते हो, यह तुम्हारी भूल है, हम सब से बड़े तो और ही है जो सारे चराचर संसार के स्वामी है । मैं तो चर जगत का स्वामी हूँ, उस में भी मनुष्यों का, मनुष्यों मे भी केवल पापियों का ही स्वामी हूँ । अत में तो प्रभु का दास हूं। उस के अंश से उत्पन्न हो कर विष्णु ब्रह्मा शिव यह तीनों संसार की स्थिति उत्पत्ति और नाश करते हैं उस सर्वेश्वर में यह संसार तागों में वस्त्र की तरह ओत प्रोत हैं तथा जिस प्रकार नकेल द्वारा एक बड़ा बैल वश में रहता है उसी प्रकार यह सारा विश्व प्रभु के वश में है । अतः आज से आगे तुम्हें सूचित कर देता हूँ कि किस प्रकार के आदमी पर तुम्हारा अधिकार है सुनो :—

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयम्
चेतश्च नो स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतो ऽकृतविष्णुकृत्यान् ।

(भा. पु.)

जिस पुरुष ने हरिनाम नहीं लिया तथा मन से प्रभु चरणों का चिन्तन नहीं किया एवं जिसका मस्तक भगवान् के चरणों में एक बार भी नत न हुआ हो, और किसी रूप मे भी जन्म भर जिन्होंने भगवान् का चिन्तन नहीं किया ऐसे पुरुषों को मेरे पास लाना होगा । यह सदा के लिये ध्यान रखो अजामिल नारायण ऐसा चार अक्षर वाला प्रभु नाम लेकर सारे पापों से रहित हो चुका है । शुक देव बोले राजा परीक्षित ? यह है हरि नाम का प्रभाव अजामिल ने तो पुत्र के बहाने केवल एक बार ही नामोच्चारण किया है, किन्तु जो श्रद्धा पूर्वक सदा नामोच्चारण करते हैं उनके तो कोई भी पाप किसी भी अवस्था में नहीं रह सकते । नरकों से बचने का यह सरल उपाय है ।

अभिमान से पतन

पाण्डवों को जब बनवास हो गया तो वे सब द्वैतवन में चले गये जो हिमालय के निकट है। वहां पर बड़े आनन्द से रहने लगे एक दिन वहां के अनेक प्रकार के सिंह आदि जंगली जीवों को देख कर भीमसेन के हृदय में विचार हुआ कि इस बन में शिकार खेलना चाहिए भीमसेन अपना धनुष लेकर शिकार खेलने चले गये चलते २ आगे एक बड़ी भारी गुफा देखने में आई ऐसे तो भीमसेन के नाद से उस बन के सारे के सारे जन्तु डर रहे थे तथा साथ ही उस गुफा में रहने वाले सारे सर्प भी डर गये उस गुफा में सब से बड़ा एक महा सर्प था जिस ने अकेले ही सारी गुफा को घेरा हुआ था उस को देख कर भीमसेन आगे वढ़े ज्यों ही आगे बढ़े उस महा सर्प ने भीमसेन को अपने फन में दबा लिया। वह सर्प महाबली था जिसने दस हजार हाथियों को वशमें कर ने बाले भीमसेन को भी पकड़ लिया भीमसेन के सायंकाल तक न लौटने के कारण युधिष्ठिर जी को वडी चिन्ता हुई. युधिष्ठिर. द्रोपदी, नकुल, एव सहदेव को अर्जुन के पास छोड़ कर उस ओर चल पड़े जिस ओर भीमसेन शिकार खेलने निकले थे। खोजते २ वहां पहुंच ही गये महा सर्प से जकड़े हुए भीम को युधिष्ठिर जी ने पूछा भाई ? सर्प द्वारा कैसे घेरे गये हो ? भीम बोले, महाराज ? यह सर्प योनि में पड़ा हुआ कोई राजा नहुष है इसने अपना भोजन बनाने के लिये अर्थात् मार कर खाने के लिये मुझे पकड़ लिया है राजा युधिष्ठिर यह सुन कर बड़े आश्चर्य में पड़ गये और उन्होंने उस महासर्प से पूछा तुम देवता हो राक्षस हो या सर्प हो

कृपा कर बतलाइये तथा भीमसेन को छोड़ दीजिये, आपको खाने के लिये और आहार दे सकता हूं। यह सुन कर वह सर्प बोला, महाराज युधिष्ठिर ? मैं पूर्व जन्म में नहुष नाम राजा था, मैंने अपने पराक्रम से इन्द्र का सिंहासन प्राप्त कर लिया था। उस स्थान को प्राप्त करके मुझे अभिमान हुआ मैंने एक हजार विद्वान् ब्राह्मणों को अपनी पालकी उठाने के लिये कहा। उनमें से एक अगस्त्य ऋषि भी थे। ऐसा अन्याय देख कर, उन्होंने मुझे सर्प बनने का शाप दे दिया मेरी ओर से बहुत प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा कि जो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देगा उसके द्वारा तुम्हारा शाप छूट जायेगा मैं उसी समय से एक महा सर्प बन कर इस वन में रहने लगा। आज बड़े सौभाग्य से आप मुझे मिले हो यदि आप मेरे प्रश्नों का उत्तर देते हो तो मैं भीमसेन को जीवित छोड़ सकता हूँ। यह सुन कर युधिष्ठिर बोले, आप प्रश्न पूछिये। सर्प पहला प्रश्न पूछता है। युधिष्ठिर ! ब्राह्मण किसे कहते हैं ? संसार मे जानने योग्य बात क्या है ? प्रश्न सुन कर युधिष्ठिर बोले। नहुष ? ब्राह्मण वह होता है जिसमें सत्य दान, क्षमा, उत्तम स्वभाव, दया आदि गुण हो। ससार में पर ब्रह्म परमेश्वर ही जानने योग्य है ! सर्प राजा युधिष्ठिर का उत्तर सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि युधिष्ठिर ? आप तो बड़े विद्वान् हो भला मैं आपके भाई भीमसेन को कैसे खा सकता हूँ। युधिष्ठिर भी उस सर्प की बुद्धि देख कर चकित हो गये तथा सर्प से प्रश्न करने लगे। सर्प राज ? कृपया यह बतलाइये कि किन कर्मों के करने से उत्तम गति प्राप्त हो सकती है यह सुन कर सर्प बोला दान अहिंसा सत्य, एन मीठा बोलना यह चार उपाय ही उत्तम गति प्राप्त करने के हैं। यह सुन कर युधिष्ठिर फिर बोले, दान और सत्य, अहिंसा और मीठा बोलने में, कौन सा बड़ा है ? यह सुन कर सर्प बोला राजन इन चारों में छोटा बड़ा किसी को भी नहीं बताया जा सकता। अपने २ स्थान

यह चारों ही विशेषता रखते हैं। इस प्रकार राजा युधिष्ठिर और
राज में परस्पर प्रश्नोत्तर हुए, तथा दोनों ही एक दूसरे से बड़े
भावित हुए राजा युधिष्ठिर सर्प से पूछने लगे भाई ? तुम इतने
द्वान् हो तो फिर जब तुम राजा थे तो तुम्हारी बुद्धि ने ब्राह्मणों का
मान करने की चेष्टा क्यों की यह सुन कर सर्प बोला राजन् ? यह
सारिक लक्ष्मी बड़ी दुष्टा है यह बुद्धिमानों पर भी अपना प्रभाव डाल
ती है अच्छा, आज मेरे शाप की अवधि समाप्त हुई यह कहते ही वह
क दिव्य पुरुष बन गया तथा भीमसेन को भी छोड़ दिया अभिप्राय
ह हुआ कि मनुष्य को कभी भी संसार की विभूतियों (धनादि को प्राप्त
र अभिमान में आकर शास्त्र विरुद्ध कर्म नहीं करना चाहिए।

यत् ते पवित्रमर्चिषि अग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनीहि नः।

(ऋ० ९. ६७, २३.)

हे अग्नि देव ! जो पवित्र और विशाल ब्रह्म तेरी ज्वाला में है,
उससे हमें पवित्र करो।

पवमानः पुनातु मा. क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
अथो अरिष्टतातये ॥

(अथ० ६. १९. १.)

पवित्रकारी भगवान् मुझे पवित्र करें मेरे में अन्दर भक्तिभाव तथा
कर्मण्यता का विकास हो। मुझे जीवन और आरोग्य प्राप्त हो।

शरद ऋतु

भगवान् श्री राम लक्ष्मण से बोले :—

वरषा विगत शरद रितु आई, लछिमन देखहु परम सुहाई ।
फूलें कास सकल महि छाई, जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई ।

(रा. मा.)

प्रिय लक्ष्मण ? देखो, वर्षा बीत गयी और परम सुन्दर शरद ऋतु आगई है । फूले हुए कास से सारी पृथ्वी छा गई है, मानो वर्षा ऋतु ने कास रूपी सुफेद बालों के रूप में अपना बुढ़ापा प्रकट किया है । और देखो :—

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा, जिमि लोभहि सोषइ संतोषा ।
सरिता सर निर्मल जल सोहा, संत हृदय जस गत मद मोहा ।।

(रा. मा.)

अगस्त्य के तारे ने उदय होकर मार्ग के जल को सुखा लिया है, जैसे संतोष लोभ को सुखा लेता है नदियों और तालाबों का निर्मल जल ऐसी शोभा पा रहा जैसे मद और मोह से रहित संतों का हृदय होता है। और देखो :—

रस रस सूख सरिता सर पानी, ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी ।
जानि सरद रितु-खंजन आए, पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए ।

(रा. मा.)

नदी और तालाबों का जल धीरे धीरे सूख रहा है, जैसे ज्ञानी पुरुष ममता का त्याग करते हैं। शरद ऋतु जान कर खंजन पक्षी भी आगये जैसे समय पाकर पुण्य प्रकट हो जाते हैं और देखो :—

बिनु घन निर्मल सोह अकासा, हरिजन इव परिहरि सब आसा।
कहुँ कहुँ, वृष्टि सारदी कोरी. कोउ एक पांव भक्ति जिमि मोरी।
(रा. मा.)

बिना बादलों का निर्मल आकाश ऐसा शोभित हो रहा है, जैसे भक्तगण सब आशाओं को छोड़ कर सुशोभित होते हैं। कहीं कहीं विरले ही स्थानों में शरद ऋतु की थोड़ी थोड़ी वर्षा हो रही है, जैसे कोई विरले ही मेरी भक्ति पाते हैं और देखो :—

सुखी मीन जे नीर अगाधा, जिमि हरि सरन न एकउ बाधा।
फूलें कमल सोह सर कैसा, निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा।
(रा. मा.)

जो मछलियां अथाह जल में हैं, वे सुखी है, जैसे श्री हरि की शरण में चले जाने पर एक भी बाधा नहीं रहती। कमलों के फूलने से तालाब ऐसी शोभा दे रहा हैं जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण होने पर शोभित होता है। और देखो :—

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खग रव नाना रूपा।
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर संपति देखी।
(रा मा.)

प्रिय लक्ष्मण ? भौंरे अनुपम शब्द करते हुए गूंज रहे हैं, तथा पक्षियों के नाना प्रकार के सुन्दर शब्द सुनने में आरहे हैं रात्रि देख कर चकवे के मन में वैसे ही दुःख हो रहा है जैसे दूसरे की सम्पत्ति देख कर

दुष्टों को होता है और देखो :—

चातक रटत तृषा अति ओही, जिमि सुख लहइ न संकर द्रोही ।
सरदातप निसि ससि अपहरई, संत दरस जिमि पातक टरई ॥

(रा, मा)

पपीहा रट लगाये हैं, उसको बड़ी प्यास है, जैसे शंकर जी का द्रोही कभी भी सुख 'नहीं पाता । शरद ऋतु की ताप को रात के समय चन्द्रमा हर लेता हैं, जैसे संतों के दर्शन से पाप दूर हो जाते हैं और देखो :—

देखि इदु चकोर समुदाई, चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई ।
मसक दस बीते हिम त्रासा, जिमि द्विज द्रोह किए कुल नासा ॥

(रा. मा.)

चकोरों के झुंड चन्द्रमा को देख कर इस प्रकार टकटकी लगाये हैं जैसे भगवान् को पाकर टकटकी नजर से उनका वर्णन करते हैं । मच्छर आदि कीड़े मकोड़े जाड़े के डर से इस प्रकार नष्ट हो गये हैं जैसे ब्राह्मण के साथ बैर करने से कुल का नाश हो जाता है ।

प्रिय लक्ष्मण ? ऐसी बड़ी सुहावनी शरद ऋतु भी आगई है । किन्तु सीता का अभी तक भी कोई पता नहीं चला ।

संसार मिथ्या है

इस कथानक द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि संसार में पिता पुत्र का पति पत्नी, का भाई, भाई का इत्यादि जितने भी सम्बन्ध हैं यह सब के सब एक कल्पना रूप हैं इनके होने पर मनुष्य को हर्ष नहीं होना चाहिये तथा न होने पर शोक । यह महामुनि श्री शुकदेव राजा परीक्षित को' सुना रहे हैं । श्री शुकदेव बोले :-

शृणुष्वावहितो राजन्नितिहासमिमं यथा ।
श्रुत द्वैपायनमुखान्नारदाद्देवलादपि ।।
(भा. पु.)

राजा परीक्षित ? मैं तुम को एक इतिहास सुना रहा हूं तुम सावधान हो कर सुनो. मैंने इस इतिहास को श्री व्यास और नारदादि के मुख से श्रवण किया था । शूरसेन देश में एक चित्रकेतु नामक चक्रवर्ती राजा थे । उनके अनेकों महारानियों के होते हुए मी कोई सन्तान न हुई, न होने के कारण प्रायः दुःखीं से रहा करते थे । एक दिन एकाएक कहीं से भ्रमण करते २ महर्षि अङ्गिरा राजा के पास आ पहुंचे । राजा चित्रकेतु ने महर्षि अङ्गिरा का अत्यन्त सत्कार किया । सत्कार पाकर महर्षि बड़े प्रसन्न हुए और राजा से कहने लगे, महाराज ? आपके परिबार तथा सारी प्रजा में कुशल तो है ? राजा चित्रकेतु उत्तर में कहने लगे, महामुने ? आप सब कुछ जानते हुए भी मुझे लज्जित क्यों कर रहे हैं । भगवन् ? आपके आशीर्वाद से राज्य बिल्कुल ठीक चल रहा है मेरी प्रजा सब प्रकार

से सुखी और धन सम्पत्तिशाली है केवल एक ही सब से बड़ा दु ख है जिससे, मैं दिन रात चिन्तित रहता हूँ अर्थात् इतनी महारानियों के होते हुए भी किसी के सन्तान नहीं। राजा की अति प्रार्थना सुन कर महर्षि अङ्गिरा कुछ थोड़ा हंसे और बोले :—राजन् ? पुत्र आदि जो भी संसार के सम्बन्ध हैं यह सब मिथ्या हैं इनके न होने से दुःखित नहीं होना चाहिये तथा होने पर प्रसन्न भी न होना चाहिये। यदि तुम अधिक आग्रह करते हो तो पुत्रकामेष्ठि यज्ञ किया जाये और उस यज्ञ का शेष आपकी सब से ज्येष्ठ महारानी को खिलाया जाय तो आप के एक पुत्र होगा। किन्तु इस पुत्र के होने पर पहले तो हर्ष होगा और बाद में शोक।

यज्ञ किया गया तथ यज्ञ का शेष ज्येष्ठ महारानी कृतद्युति को खिलाया गय । अङ्गिरा के आशीर्वाद से समय आने पर एक बड़ा विलक्षण बालक राजा चित्रकेतु के धर उत्पन्न हुआ इस सुअवसर पर राजा ने विद्वान्, महर्षि, दीन अनाथों को अन्यन्त धन बाँटा तथा ६,०००००० साठ करोड़ गौओं का दान किया। इस प्रकार पुत्र प्राप्ति की प्रसन्नता में बड़ा आनन्द से समय बीतने लगा। एक दिन जिनके सन्तान न थी वे सब रानियाँ आपस में विचार करने लगी कि अब राजा हम सबको तो पूछते तक नहीं बस केवल कृतद्युति जिसके राजकुमार हुआ है इन्हीं को राजा विशेष कर चाहते हैं। क्यों न इस राजकुमार को ही विष देकर सदा के लिये समाप्त किया जाय। सब रानियों ने यह निश्चय कर रात्रि को राजकुमार को विष दे डाला। प्रातः काल कुमार को मृतावस्था में पाकर शोक का समुद्र उमड़ आया। चारों ओर सन्नाटा छा गया। रानी कृतद्युति और राजा चित्रकेतु विह्वल हो कर विलाप करने लगे।

स्तनद्वयं कुङ्कुमगन्धमण्डितम् ।
निषिञ्चती साञ्जनवाष्पविन्दुभिः ॥

विकीर्य केशान् विगलत्स्रजः सुतम् ।
शुशोच चित्र कुररीव सुस्वरम् ।।

(भा. पु.)

वह वेचारी रानी पुष्प मालाओं से रहित अपने सिर के बालों को खोल कर एवं अञ्जन सहित अश्रुधाराओं से केसर की सुगन्धि से सुगन्धित स्तनों को सींचती हुई इस प्रकार पुत्र के प्रति विलाप करने लगी जिस प्रकार कुररी (पक्षी विशेष) अपने प्रिय के वियोग में बिलाप किया करती है। राजा चित्रकेतु मूर्छित हो गये। इतने में महर्षि अङ्गिरा भी नारद सहित पहुंच गये तथा राजा को अनेक प्रकार के उपदेश देते हुए कहने लगे :—

कोऽय स्यात्तव राजेन्द्र भवान् यमनुशोचति ।
त्व चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम् ।।
यथा प्रयान्ति सयन्ति स्रोतो वेगेन वालुकाः ।
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ।।

(भा. पु.)

राजन् ? जरा ध्यान से सोचो तो सही जिस पुत्र के लिये तुम शोक कर रहे हो, इसका और आपका पूर्व जन्म में क्या सम्बन्ध था तथा इस से आगे अब क्या होगा। यह निश्चित नहीं कि तुम और ये बालक सदा से ही आपस में बाप बेटा बनते चले आ रहे हैं यह सम्बन्ध तो सारे के सारे बदलते रहते हैं जो चीज बदलने वाली हो उसके लिये इतना शोक। जिस प्रकार नदी के प्रवाह से बालु के ढेर के ढेर अपने २ समय पर स्वयं ही बनते और बिगड़ते रहते हैं इसी प्रकार मनुष्यों के यह सम्बन्ध भी हैं। इस में हर्ष और शोक करने की आवश्यकता ही नहीं। राजन्, यदि आप को सचमुच विश्वास है कि यह मेरा बेटा है तो मैं इसे बुला कर आप से बातें करवा देता हूँ। यह कह कर महर्षि ने बालक के शव पर जल

ड़क दिया तुरन्त ही जीव का प्रवेश हो गया तथा वह जीवात्मा जा चित्रकेतु से बोला।

यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि ततस्ततः।
पर्यटन्ति नरेष्वेवं जीवो योनिषु कर्तृषु॥
नित्यस्यार्थस्य सम्बन्धो ह्यनित्यो दृश्यते नृप।
यावद्यस्य हि सम्बन्धो ममत्वं तावदेव हि॥

(भा. पु.)

राजन्? मैं न आपका बेटा हूँ तथा न आप मेरे पिता हैं। यह तो ऐसा सम्बन्ध है जैसा वस्तु खरीदने वाले का और बेचने वाले का होता है। जब तक वस्तु अपने पास रहती है तभी तक उसके ऊपर अधिकार होता है जब बेच दी तो फिर खरीद करने वाले का अधिकार हो जाता है। अतः जिस प्रकार वस्तु इधर उधर घूमती रहती है इसी प्रकार जीव भी योनियों में भ्रमण करता रहता है आज से आगे न आप पिता रहे न मैं पुत्र। जीव की बातें सुन कर राजा को बोध हुआ। अङ्गिरा महर्षि बोले – राजन्? पुत्र प्राप्ति से कितना दुःख उठाना पड़ा। इसी प्रकार संसार के सारे सम्बन्ध हैं। इनके विषय में बुद्धिमान् को हर्ष और शोक नहीं करना चाहिये।

ब्रह्म तेज का प्रभाव

महाभारत के इस इतिहास में यह वतलाया गया है कि ब्रह्म तेज के आगे अन्य शक्ति निष्फल हो जाया करती है एवं महर्षियों के साथ वैर करने से अपनी ही हानि होती है। अयोध्या में इक्ष्वाकु वश में एक परीक्षत नामक राजा थे वे एक दिन शिकार खेलने की इच्छा से घोड़े पर चढ़ कर वन की ओर निकले। चलते २ निर्जन वन में पहुंच गये । उस वन में एक सुन्दर स्थान में बैठकर कुछ समय पश्चात् एक सुन्दर तालाब में घोड़े के सहित स्नान करने के पश्चात् घोड़े को खाने के लिये तालाब से कुछ कमल के दण्ड (बिस) निकाल कर डाल दिये तथा स्वयं किनारे पर सो गये। मीठी नींद आ ही रही थी कि कहीं से मधुर संगीत सुनाई दिया। राजा चौंका तथा मन में बिचार हुआ कि पास में ही कोई व्यक्ति है। थोड़ा आगे बढ़े और कुछ दूर फूल चुनती हुई एक अत्यन्त सुन्दर कन्या को देखा। वह कन्या भी राजा को देखते ही तुरन्त राजा के पास पहुंच गई राजा ने पूछा देवी? तुम किस की बेटी हो तथा कौन हो? बालिका ने उत्तर दिया मैं एक कन्या हूँ। राजा ने कहा यदि तुम कन्या हो तो मैं तुम से विवाह करना चाहता हूँ। कन्या ने कहा मेरी एक प्रतिज्ञा है कि मेरे सामने पानी बिलकुल न लाना होगा। राजा ने स्वीकार कर लिया तथा दोनों में परस्पर बिवाह हो गया। राजा आनन्द मग्न हो कर उसी बन में रहने लगे। कुछ दिन बीतने पर बहुत सारे सैनिक राजा की खोज में

घूमते २ वहाँ पहुंच गये, तथा राजा को रानी सहित अपनी राजधानी अयोध्या पहुँचा दिया। अयोध्या में राजा परीक्षित और वह रानी ऐसे स्थान में रहने लगे जहाँ पानी बिलकुल नहीं ले जाया जाता था। उस कन्या के पास कोई ऐसी शक्ति थी कि वह बिना पानी से ही स्वच्छ और स्वस्थ रहती थी। राजा भी वैसे ही रहने लगे। एक दिन दूसरी रानियों ने मन्त्रियों को बुला कर मन्त्रणा की कि पानी से दूर रहने का कुछ कारण है, हो सकता है पानी से ही दोनों वश में हो सकें। मन्त्री बुद्धिमान् थे उन्होंने एक उद्यान (वाग) बनवाया तथा उसमें एक गुप्त तालाव भी बीच में बनवा डाला जो ऊपर से सूखा प्रतीत होता था किन्तु नीचे उसमें पानी था। ऐसा उद्यान बना कर राजा और रानी से कहा महाराज ? हमने एक बिना पानी का बाग बनवाया है आप उस में भ्रमण कीजिए ? मन्त्री सहित राजा और रानी वाग की ओर निकले भ्रमण करते २ उस तालाब के पास पहुंचे। मन्त्री ने कहा महाराज ? यह विना पानी का तालाब है। देखो तो सही—राजा ने पहले रानी को उसमें प्रवेश के लिये कहा। रानी ने तालाब में प्रवेश किया किन्तु प्रवेश के अनन्तर रानी वापिस न लौटी क्योंकि उसमें पानी था। राजा क्रुद्ध हुए तालाब से सारा पानी निकाला गया। खाली करने पर उसमें एक मैंडक मिला। राजा मैंडक पर क्रुद्ध हुए तथा अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि इस मैंडक ने ही रानी को खाया है इस को मार डालो तथा इसके अतिरिक्त और भी जहाँ २ मैंडक हैं सब को मारा जाय। इस प्रकार का अत्याचार होने पर मैंडकों का राजा तपस्वी का वेष वना कर राजा परीक्षित के पास आया और प्रार्थना करने लगा, महाराज ? यह मैंडक निरपराधी हैं इन पर क्रोध मत कीजिए। राजा समझाने पर न माने फिर उस मैंडकों के राजा ने असली रूप धारण कर कहा। मेरा नाम आयु है तथा मैं मैंडकों का राजा हूँ। आपकी रानी मेरी कन्या है,

इसका नाम सुशोभना है। यह लो, अपनी रानीं। इसने कई राजाओं को ऐसी उलझन में डाला है इस लिये इसकी सन्तान दुष्ट होंगी। रानी को उसके पिता ने शाप दे दिया। यह कह कर मैंडकों का राजा चला गया। कुछ समय पश्चात् रानी के ३ बालक उत्पन्न हुए, एक का नाम शल दूसरे का नाम दल तीसरे का नाम बल था। एक दिन राजा परीक्षित पुनः शिकार खेलने निकले, शिकार खेलते २ एक सुन्दर मृग एक बाण लगने पर छूट गया। राजा ने अपने सूत (रथ चलाने वाले) से कहा रथ तेज चलाओ, सूत ने कहा महाराज? यह मृग तब मारा जा सकता है यदि आपके रथ मे महर्षि वामदेब के घोड़े जोते जाय। यह सुनते ही राजा वाम देब जी के पास गये। वामदेव जी ने राजा की दशा देख कर अपने घोड़े दे दिये किन्तु शीघ्र लौटाने के लिये कहा। राजा ने भी स्वीकार किया। किन्तु जब एक मास बीत गया तो वामदेव जी ने अपना शिष्य राजा के पास भेजा राजा ने कहा वे घोड़े तो मेरे हैं ब्राह्मणों को घोड़ों की क्या आवश्यकता? वामदेव यह सुन कर क्रुद्ध हुए तथा दोनों में बड़ा सम्वाद हुआ। वामदेव ने क्रोध में आकर राजा परीक्षित को भस्म कर दिया। राजा की मृत्यु के अनन्तर सब क्षत्रियों ने मिलकर दल को राज्य अधिकार दिया। वामदेव उसके पास भी आये कि भाई मेरे घोड़े दे दो। यह तुनकर वह राजा दल वामदेव को बाण मारने के लिये उद्यत हुआ। वामदेव ने कहा इस बाण से तेरे पुत्र की ही हत्या होगी। महर्षि के ऐसा कहते ही उसके पुत्र का नाश हो गया। ऐसी दुखावस्था देख कर रानी महर्षि के सामने आई और प्रार्थना की महाराज? यह लो आपके घोड़े। हम को ब्रह्म तेज के प्रभाव का पता नहीं था। आप से वर मांगती हूं। वामदेव ने प्रसन्न हो कर उसे बर माँगने की आज्ञा दी। रानी ने अपने पति राजा परीक्षित के अपराधों की क्षमा का वर माँगा। वामदेव की कृपा से राजा परीक्षित भी ब्रह्म द्रोह के पाप से मुक्त हो गए।

———

श्री हनुमान् की विभीषण से भेंट

जब हनुमान् श्री भगवान् का आशीर्वाद लेकर सीता जीं की खोज में निकले तो मार्ग में अनेकों राक्षसों का संहार करते हुए लंका पहुंच गये, वहाँ पहुंच कर मन में सोचने लगे कि लंका तो राक्षसों का निवास स्थान है। यहाँ सज्जन (साधु पुरुष) का निवास कहाँ ? हनुमान् जी मन में इस प्रजार तर्क कर ही रहे थे कि उतने विभीषण आ पहुंचे।

राम नाम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदयं हरष कपि सज्जन चीन्हा।
एहि सन हठि करिह पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी।
(रा. मा.)

बिभीषण ने राम नाम का स्मरण (उच्चारण) किया। हनुमान् जी ने यह सुन कर उन्हें सज्जन जाना तथा अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा मन में यह सोचा कि इनसे हठ करके अपनी ओर से परिचय करूंगा, क्योंकि साधु से कार्य की हानि नहीं होती अपितु लाभ ही होता है।

विप्र रूप धरि वचन सुनाए। सुनत विभीषण उठि तहं आए।
करि प्रनाम पूंछी कुसलाई। विप्र कहहु निज कथा सुनाई।
(रा. मा.)

ब्राह्मण का रूप धारण कर हनुमान् जी ने उनके साथ वार्तालाप किया। यह सुनते ही विभीषण उठकर उनके समीप आ गये तथा प्रणाम

करके कुशल पूछा और कहाकि ब्राह्मण देव ? अपना सारा वृतान्त समझा कर कहिये । विभीषण और बोले :—

की तुम्ह हरि दासन्ह महं कोई । मोरें हृदय प्रीति अति होई ।
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी । आयहु मोहि करन, बड़भागी ।
(रा. मा.)

महाराज ? क्या आप हरि भक्तों मे से कोई हैं ? क्योंकि आपको देख कर मेरे हृदय मे अत्यन्त प्रेम उमड़ रहा है अथवा क्या आप दीनों से प्रेम करने वाले स्वय श्री राम जी ही हैं, जो मुझे बड़भागी बनाने अर्थात् घर बैठे दर्शन देकर कृतार्थ करने आये हैं ।

तब हनुमत कही सब राम कथा निज नाम ।
सुनत युगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुनग्राम ।
(रा. मा.)

विभीषण के वचन सुन कर हनुमान् जी ने श्रीराम की सारी कथा कह कर अपना नाम बताया । सुनते ही दोनों के शरीर पुलकित हो गये और श्री राम के गुण समूहों का स्मरण करके दोनों के मन प्रेम और आनन्द में मग्न हो गये । विभीषण जी अपनी दशा सुनाने लगे :—

सुनहु पवन सुत्र रहनि हमारी, जिमि दसनन्हि महूं जीभ विचारी ।
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा, करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ।
(रा. मा.)

पवन सुत ? मेरी दशा सुनो कि मैं लङ्का में किस प्रकार रहता हूँ, में वैसे ही रहता हूँ जैसे दाँतों के बीच में बेचारी जीभ रहती है । प्रभो ? मुझे अनाथ जान कर सूर्य कुल के नाथ श्री राम क्या कभी मुझ पर कृपा करेंगे । बिभीषण और बोले :—

तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं।
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।
(रा. मा.)

हनुमान ? मेरा तामसी (राक्षस) शरीर होने से साधन तो कुछ बनता नहीं और न मन में श्री राम जी के चरण कमलों में प्रेम ही है, परन्तु अब मुझे विश्वास हो गया है कि श्री राम जी की मुझ पर कृपा है क्योंकि हरि की कृपा के बिना संत नहीं मिला करते । विभीषण और बोले :—

जौ रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा।
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीति। करहिं सदा सेवक पर प्रीति।
(रा. मा.)

अब प्रभु ने कृपा की है तभी तो आपने हठ करके अपनी ओर से दर्शन दिये हैं। यह सुन कर हनुमान् बोले :- विभीषण ? सुनिए, प्रभु की यही रीति है कि वे सब पर सदा ही प्रेम किया करते हैं हनुमान् और बोले :-

कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना।
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा।
(रा. मा.)

विभीषण ? भला कहिए, मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूं : जाति का चञ्चल बानर हूं और सब प्रकार से नीच हूं। प्रात:काल जो हम लोगों (बन्दरों) का नाम ले लें तो उस दिन उसे भोजन न मिले। किन्तु फिर भी :—

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुवीर ।
कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे विलोचन नीर ।
(रा. मा.)

सखा विभीषण ? सुनिए, मैं ऐसा अधम हूँ। पर श्री राम जी ने तो मुझ पर भी कृपा ही की है। इस प्रकार भगवान् की महिमा कहते २ हनुमान् जी के दोनों नेत्रों में प्रेम के आँसुओं का जल भर आया तथा फिर बोले :—

जानत हूं अस स्वामि विसारी। फि हि ते काहे न होहि दुखारी।
एहि गुन कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य विश्रामा ।
(रा. मा.)

इस प्रकार जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी श्री राम जी को भुला कर विषयों के पीछे भटकते फिरते हैं वे दुःखी क्यों न हों ? इस प्रकार श्री राम जी के गुण समूहों का वर्णन करते हुए विभीषण और हनुमान् ने परम शान्ति प्राप्त की। वास्तव में संसार में भगवान् का स्मरण ही परम शान्ति का साधन है।

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता संगमेमह ॥
(ऋ. ५, ५१.१५)

हम सूर्य और चन्द्र की तरह कल्याण मार्ग पर चलें। हम उदार स्वभाव, हिंसा रहित, ज्ञानवानों की संगति करें।

—:o:—

प्रभु भक्त प्रह्लाद

एक बार महा दानव हिरण्य कशिपु मन्दराचल पर्वत की गुफा में भयङ्कर तपस्या करने लगा। राक्षस की भयङ्कर तपस्या से सारा ब्रह्माण्ड काँप उठा। हिरण्य कशिपु की भयङ्कर तपस्या से ब्रह्मा प्रभावित हुए तथा हिरण्यकशिपु के पास पहुंचे। हिरण्यकशिपु का शरीर तपस्या करते २ गल चुका था। ब्रह्मा जी को केवल हड्डी का ढेर ही मिला। फिर ब्रह्मा ने कमण्डलु के जल से उस ढेर का मार्जन किया। उसके प्रभाव से हिरण्य कशिपु शरीर धारण कर खड़ा होकर बोला ब्रह्मदेव ? मैं आपके दर्शनों से कृतार्थ हो गया हूँ, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो वर माँगता हूँ :— हिरण्य कशिपु बोला :—

भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्यु र्मा भून्मम प्रभो।
नान्तर्बहि र्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः।
न भूमौ नाम्बरे मृत्यु र्नरैर्गपि मृगैरपि।

(भा. पु.)

प्रभो ? यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो यह वर माँगता हूं कि संसार में किसी भी प्राणी के द्वारा, अन्दर न बाहर, रात मे न दिन में, न पृथ्वी में न आकाश में, न मनुष्य न मृग के हाथ मेरी मृत्यु हो। तथा सारे ब्रह्माण्ड में मेरा साम्राज्य हो। ब्रह्मा जीने उसकी भक्ति से प्रभावित होकर उसकी इच्छानुसार वरदान दे दिया। हिरण्यकशिपु

सारे के सारे विलक्षण वरों को प्राप्त कर देवता गो ब्राह्मणों को पीड़ित करने लगा। सारे के सारे देवता गण दुःखित होकर ब्रह्मा के पास पहुंचे । देवताओं की प्रार्थना सुन कर ब्रह्मा ने देवताओं से कहा :—

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु ।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ।
निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने ।
प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽह वरोर्जितम् ।

(भा. पु.)

देवताओं ? चिन्ता की कोई बात नहीं । जब वह दुष्टात्मा देवता, वेद, ब्राह्मण, साधू पुरुष, तथा मुझ से पूर्ण शत्रुता ठानेगा तो शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा तथा जब महाभक्त शान्तात्मा अपने पुत्र प्रह्लाद के साथ द्रोह करेगा तो मैं तुरन्त ही आकर उस दुष्टात्मा का विनाश कर दूंगा । यह सुन कर देवतागण अपने २ धाम लौट आये । हिरण्य कशिपु के चार पुत्रों में प्रह्लाद सब से बुद्धिमान् और गुणी पुत्र था, इसलिये उसे शुक्राचार्य के पुत्र शण्डा और मर्क के पास विद्या पढ़ने के लिये छोड़ दिया गया एक दिन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को बुलाकर अपनी गोद में बिठाया और कहा बेटा ? अब तो तुम खूब पढ़ गये हो भला यह तो बताओ कि संसार में सब से अच्छा काम क्या है ? प्रह्लाद पिता के प्रश्न को सुन कर बोले :—

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनाम् ।
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ।
हित्वात्मपात गृहमन्धकूपम् ।
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ।

(भा. पु.)

महाराज ? मैं उन सब मनुष्यों के लिये जो माया मोह से ग्रस्त हैं यही काम सब से अच्छा समझता हूँ कि वे इस दुःख प्रद संसार के जाल को छोड़ कर एकान्त में प्रभु का चिन्तन करें। प्रह्लाद का यह उत्तर सुनते ही हिरण्यकशिपु आग ववूला हो गया और अध्यापकों को बुलाकर कहा कि यह बालक दिनों दिन बिगड़ता जा रहा है इसको ठीक शिक्षा दीजिये नहीं तो आपको प्राण दण्ड दिया जायगा। अध्यापक प्रह्लाद के साथ कठोरता का व्यवहार करने लगे। एक दिन पुनः हिरण्य कशिपु ने प्रह्लाद को बुलाकर पूछा :– बताओ तुमने अब क्या २ पढ़ लिया। प्रह्लाद वोले :—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।

(भा.

महाराज ? भगवान् की महिमा का श्रवण, गुणों वा नाम का कीर्तन, लीलाओं का स्मरण, भक्तों की सेवा, प्रभु पूजा, भक्तों के चरणों में प्रणाम करना, महात्माओं की सेवा करना, प्रभु से मित्रता करना, एवं अपना सब कुछ प्रभु चरणों में अर्पण करना, यह नौ प्रकार की भक्ति निष्कामभाव से जिसकी समझ में आ गई मैं समझता हूँ उसने सब कुछ पढ़ लिया, उसके लिये कुछ और पढ़ने को नहीं रह जाता। हिरण्यकशिपु के यह सुनते ही–क्रोध की कोई सीमा न रही। प्रह्लाद को इस मार्ग से हटाने के लिये कई प्रकार के भय दिखाये गये किन्तु प्रह्लाद प्रभु की भक्ति में लवलीन हैं उनका मन प्रभु चरणों से क्षण भर के लिये भी विलग नहीं होना चाहता। एक दिन भरी सभा में एक लोहे

का खम्भा गर्म किया गया और प्रह्लाद को बुलाकर हिरण्य कशिपु ने कहा :—

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ।
क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते ॥ (भा.पु.)

प्रह्लाद ? तुम सर्वदा मेरे से अतिरिक्त किसी दूसरे ईश्वर नामधारी को सर्व व्यापक मानते हो। यदि ऐसी बात है तो वह इस स्तम्भ में क्यों नहीं देखा जाता। यह कहते ही प्रभु अपने भक्त की रक्षा के लिये नृसिंह के रूप में अवतरित हो गये तथा हिरण्य कशिपु का विनाश कर दिया।

विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो
अनमीवा अनागसः। उद्यन्तं त्वा मित्रमहो
दिवे दिवे ज्योग् जीवाः प्रतिपश्येम सूर्य।
(ऋ. १०. ३७, ७)

हे सूर्य, हे प्रचण्ड ज्योति के भण्डार, हम दीर्घ काल तक सजीव रहें और प्रति दिन तुम्हें उदय होते हुए देखते रहें। स्वस्थ मनों वाले, स्वस्थ इन्द्रियों वाले और स्वस्थ प्रजा वाले हों। कोई रोग अथवा व्याधि हमें छू न सके।

राजा शिवि का त्याग

पूर्वकाल में राजा शिवि बड़े दानी और पराक्रमी राजा थे। राजा शिवि के पराक्रम की महिमा स्वर्ग तक फैल गई। एक दिन स्वर्ग में इन्द्र और अग्नि दोनों बैठ कर आपस में बातें करने लगे कि मृत्यु लोक में राजा शिवि बड़ा दानी और पराक्रमी सुना जाता है भला क्यों न हम दोनों चल कर उसकी परीक्षा लें। परन्तु परीक्षा गुप्त रूप में ही ली जा सकती है। इन्द्र ने कहा मैं तो बाज (पक्षी) का रूप धारण कर लेता हूँ। अग्निदेव आप कपोत (कबूतर) का रूप धारण कर लो। ऐसा निश्चय कर वे दोनों इन्द्र और अग्नि राजा शिवि की सभा में बाज और कबूतर के रूप में उपस्थित हो गये? वह कबूतर बोला महाराज? मैं प्राण रक्षा के लिये आपकी शरण में आया हूँ देखिए, यह बाज मेरे प्राण लेना चाहता है। मैं ने इसका कोई अपराध नहीं किया, यदि आपको विश्वास नहीं तो मैं वेद मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ शपथ लेता हूँ। मैं बिलकुल निरपराधी हूँ। इस प्रकार जब वह कबूतर बोल चुका तो पास में बैठा बाज राजा शिवि से कहने लगा :—महाराज? यह तो आप जानते ही हैं कि एक जन्म में जो आपस में पुत्र पिता होते हैं वह दूसरे जन्म में पिता पुत्र भी बन सकते हैं क्योंकि यह सब सम्बन्ध बदलते रहते हैं। यह जो कबूतर है पूर्व जन्म में आपका पिता था। इसलिये ही बचने के लिये आपके पास आया है। राजा शिवि कबूतर और बाज दोनों की बातें सुन कर सोचने लगे कि मेरा कबूतर से कोई सम्बन्ध हो चाहे न हो, शरण में चाहे शत्रु भी आये तो भी उसकी रक्षा करना मनुष्य का कर्तव्य है। यह सोच कर उस बाज

से कहने लगे भाई ? यह कबूतर तो आपको किसी प्रकार भी नहीं मिल सकता, इसके अतिरिक्त मैं और पशु आपको भोजन के लिये दे सकता हूँ । श्येन (बाज) राजा की बात सुन कर बोला, महाराज ? मुझे किसी अन्य पशु की बिलकुल भी आवश्यकता नहीं. क्यों कि मुझे तो केवल इतना ही माँस चाहिये जितना यह कबूतर है। राजा शिवि यह सुन कर बड़े चिन्तित हुए, उन्होंने पुनः बाज को अनेक प्रकार से समझाया किन्तु वह बाज फिर बोला, महाराज ? यदि आप बहुत ही आग्रह करते हैं तो अपनी दाहिनी टाँग से माँस निकाल कर कबूतर के बराबर तोल कर दे दीजिए। इससे मेरा भी काम चल पड़ेगा और आपका भी चारों ओर यश फैल जायेगा। राजा शिवि ने कबूतर के बदले अपना माँस देना स्वीकार कर लिया। तकड़ी मंगवाई गई एक ओर कबूतर को बिठा तथा दूसरी ओर राजा शिबि अपना माँस नोच २ कर तराजू में रखने लगे। कबूतर का तोल भारी ही होता चला गया। राजा शिवि का शरीर माँस रहित हो गया। अर्थात् शरीर का सारा माँस तराजू में रख देने पर भी कबूतर का तोल पूरा न हो सका। जब राजा ने यह सोचा तो वे स्वयं ही एक ओर तराजू में बैठ गये। राजा शिवि का त्याग देख कर वह बाज और कबूतर दोनों अपना असली रूप इन्द्र और अग्निदेव का धारण कर राजा शिवि के सामने खड़े हो कर बोले। महाराज ? क्षमा कीजिए, हम दोनों इन्द्र और अग्नि है। स्वर्ग से आपकी परीक्षा लेने के लिये गुप्त रूप में यहाँ आये थे सचमुच ही आप महा त्यागी हो, जैसा यश आपका हमने स्वर्ग में सुना था वैसा ही आज देखा गया है। ऐसा कहते २ फूलों की बर्षा होने लगी तथा राजा शिवि का शरीर पहले की भान्ति दिब्य शरीर बन गया। इन्द्र ने कहा राजन् ? आपने अपना माँस देकर कबूतर की रक्षा की है इसलिये आपके कपोत रोमा नाम वाला पुत्र होगा जो समस्त विश्व पर चक्रवर्तित्व राज्य करेगा। ऐसा कहकर इन्द्र और अग्नि अपने धाम चले गये। राजा शिवि अत्यन्त त्यागात्मा थे। इसीलिये तुलसी जी ने कहा है :-

शिवि दधीचि हरिचन्द्र नरेशु, सहेहू धर्म हित कोटि कलेशु ॥ (रा.मा.)

रावण को विभीषण का उपदेश

जब भगवान् श्री राम की सेना लङ्का में पहुँच गई तो रावण अपने कमरे में कुछ विचार में तत्पर था, इतने में विभीषण भी आ हुँचे, और बोले :-

पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला वचन पाइ अनुसासन।।
जौ कृपाल पूंछिहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहउं हित ताता।।
(रा. मा.)

विभीषण सिर नवा कर अपने आसन पर बैठ गये और आज्ञा पाकर ये वचन बोले - कृपालु ? जब आपने मुझ से राय पूछी ही है, तो हे तात ? मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपके हित की बात कहता हूँ। विभीषण बोले :-

जो आपन चाहे कल्याना।
सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।।
सो पर नारि लिलार गोसाईं।
तजहु चउथि के चद कि नाईं।
(रा. मा.)

हे स्वामी ? जो मनुष्य अपना कल्याण, सुन्दर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकार के सुख चाहता हो, वह पर स्त्री के ललाट को चौथ के चन्द्रमा की तरह याग दे अर्थात् जैसे लोग चौथ के चन्द्रमा को

देखते, उसी प्रकार पर स्त्री का मुख ही न देखे। विभीषण और बोले :-

चौदह भुवन एक पति होई।
भूत द्रोह तिष्ठइ नहिं सोई ॥
गुन सागर नागर न जोऊ।
अलप लोभ भल कहइ न कोऊ ॥
(रा. मा.)

चाहे चौदहों भुवनों का एक ही स्वामी हो, वह भी जीवों से बैर करके ठैर नहीं सकता। जो मनुष्य गुणों का समुद्र और चतुर हो, उसे चाहे थोड़ा भी लोभ क्यों न हो, तो भी कोई भला नहीं कहता। और सुनो.

काम क्रोध मद लौभ सब नाथ नरक के पथ।
सब परिहरि रघुवीरहि भजहु भजहिं जेहि संत ॥
(रा, मा.)

हे नाथ ? काम, क्रोध, मद और लोभ ये सब नरक के रास्ते हैं। भ्राता जी ? मैं आप से यही प्रार्थना करूंगा कि इन सब को छोड़ कर श्री राम चन्द्र जी को भजिये, जिन्हें सन्त पुरुष भी भजा करते हैं। विभीषण और बोले :-

तात राम नहि नर भूपाला, भुवनेश्वर कालहु कर काला ।।
ब्रह्म अनामय अज भगवता, ब्यापक अजित अनादि अनंता ।।
(रा. मा.)

प्रिय भ्राता ? राम मनुष्यों के ही राजा नहीं है वे समस्त लोक के स्वामी और काल के भी काल है। वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य, यश, श्री, धर्म, वैराग्य एवं ज्ञान के भण्डार भगवान् हैं, वे निरामय (विकार रहित) अजन्मा, व्यापक, अजेय, अनादि और अनन्त ब्रह्म हैं। विभीषण और बोले :-

गो द्विज धेनु देव हितकारी, कृपा सिन्धु मानुष तनुधारी। ।
जन रंजन भजन खल व्राता, वेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता ॥

हे भाई ! सुनिये, कृपा के समुद्र भगवान् ने पृथ्वी, ब्राह्मण गौ, और देवताओं का हित करने के लिये ही मनुष्य शरीर धारण किया है। वे सेवकों को आनन्द देने वाले, दुष्टों के समूह का नाश करने वाले और वेद तथा धर्म की रक्षा करने वाले हैं। और सुनो :-

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा, प्रनतारति भंजन रघुनाथा ॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ वैदेही, भजहु राम बिनु हेतु सनेही ॥

(रा. मा.)

हे नाथ ? राम से वैर त्याग कर उनके चरणों में मस्तक नवाइये। वे राम शरणागत का दुःख नाश करने वाले हैं। मैं बार बार आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि श्री सीता जी लौटा दीजिए तथा बिना कारण प्रेम करने वाले श्री राम जी का भजन कीजिए विभीषण और बोले :–

सरन गए प्रभु ताहु न त्यागा, विस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा ॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन, सोइ प्रभु प्रगट समुभु जिय रावन ॥

(रा. मा.)

हे रावण ? जिसे सम्पूर्ण जगत् से द्रोह करने का पाप लगा है, शरण जाने पर प्रभु उसका भी त्याग नहीं करते। जिनका नाम तीनों तापों का नाश करने वाला है, वे ही प्रभु मनुष्य रूप में प्रकट हुए हैं। हृदय में यह समझ लीजिए। विभीषण के इस प्रकार अनेक प्रकार से समझाने पर भी रावण भगवान् राम से क्षमा नहीं माँगना चाहता तथा नहीं सीता जी को लौटाना चाहता है। ठीक ही है :—

विनाशकाले विपरीतबुद्धि·

